विवाह-विज्ञापन

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

हँसने-हँसानेवाली चुनी हुई पुस्तकें

गधे की कहानी	॥।),
नटखट पाँड़े	१॥),
लबड़धोंधों	॥।=), १।
रायबहादुर	॥।),
मूर्ख-मंडली	॥=), १=
प्रायश्चित्त-प्रहसन	।)
मिस्टर व्यास की कथा	२॥), ३
नोकझोंक	१।)
मड़ामसिंह शर्मा...	॥=)
मार-मारकर हकीम	१)
साहबबहादुर	१।)
मर्दानी औरत	१)
दुमदार आदमी	१॥)
नाक में दम	१
लंबी दाढ़ी	
गुदगुदी	
ठोक-पीटकर वैद्यराज	
गंगा-जमुनी (दो भाग)	
गोलमाल	
गोबरगणेश-संहिता	

मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२६-३०, अमीनाबाद

गंगा-पुस्तकमाला का चौहत्तरवाँ पुष्प

विवाह-विज्ञापन

(प्रहसन)

लेखक

बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

अध्यापक, लखनऊ-विश्वविद्यालय

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।।)] सं० १९८४ वि० [सादी १)

57

1127

समर्पण

जिसका वह विवाह-विज्ञापन
है इस प्रहसन का आधार,
मिली न जिन्स, रहा सूखा
जिसको विस्तृत विवाह-बाज़ार,
उस दुखिया के दिल का गड्ढा
यथाशक्ति मैं भरता हूँ—
इस पोथी-देवी को सादर
उसे समर्पित करता हूँ।

लेखक

भूमिका

कुछ दिन हुए तब अँगरेजी के कुछ पत्रों में किन्हीं सज्जन का एक विवाह-विज्ञापन छपा था। उसे पढ़कर मेरे मन में यह बात आई कि उस प्रकार के विज्ञापन-दाताओं पर कुछ लिखा जाय। हाल में मैंने यह प्रहसन लिखा है। खेद है, इस समय वह विज्ञापन मेरे पास नहीं है, वरना उसे भी छाप देता। मुझे विश्वास है कि उसे पढ़ने पर, मेरा उस पर इस प्रकार समय नष्ट करना पाठकों को अनुचित न लगता।

रामसदन, लखनऊ
ता० ६-१०-२६

बदरीनाथ भट्ट

पात्र

पुरुष

(१) बेचैनीराम—विवाहार्थी युवक

(२) अख़बारबहादुर—'बाँगड़ू-समाचार' का संपादक ; बेचैनीराम का मित्र

(३) दीवानबहादुर—एक पेंशन-प्राप्त रियासती दीवान

(४) तहसीलदार—दीवानबहादुर का मित्र

(५) लपकुआ—दीवानबहादुर का नौकर

(६) एक नवयुवक, कुछ पुलिस के सिपाही

स्त्री

(१) वाल्टीदेवी—दीवानबहादुर की कन्या

(२) एक सखी

विवाह-विज्ञापन

पहला दृश्य

स्थान—बेचैनीराम का घर

(बेचैनीराम अपने भाग्य को रो रहे हैं)

बेचैनीराम—मैं वकता-वकता सिड़ी हो गया, पर हे विधाता, तूने मेरी एक न सुनी ! हे विष्णु भगवान्, तुम्हें लक्ष्मी के साथ चौसर खेलने से कहाँ अवकाश ! हे महादेवजी, तुम्हें पार्वतीजी के साथ गप्पें लड़ाने से कहाँ उदासीनता ! हे बूढ़े ब्रह्माजी, तुम्हें संसार की जन-संख्या बढ़ाने की चिंता से कहाँ उकताहट ! एक बात पूछना चाहता हूँ। सुना है, तुम लड़के के लिये लड़की और लड़की के लिये लड़का अवश्य उत्पन्न करते हो। यदि यह सच है, तो जल्दी बताओ, मैं किधर टटोलूँ ? और, कौन मुझे टटोल रहा है—नहीं—टटोल रही है ? कौन मेरे विरह में अपने प्राणों से हाथ धोया चाहती है ? (कुछ सोचकर) शोक है, मैं यह न जानता था कि वे दोनों मुझे इतनी जल्दी छोड़ जायँगी ; वरना डाटना-फटकारना तो क्या, कभी उनसे आधी बात

भी न कहता। जो कहीं आज वे दोनों मेरी भूत-पत्नियाँ, किसी तरह से जीवित हो जायँ, तो मैं उनसे क्षमा माँगकर सदा उनका दास बना रहूँ। जो कहीं मुझे अब कोई मिल जाय, तो मैं उसकी ऐसी-ऐसी सेवाएँ करूँ कि वह भी याद रक्खे कि कभी कोई मिला था। मैं सदा बहू-मत से काम किया करूँ, जैसा कि सभा-समितियों में होता है।

('बाँगड़-समाचार' के संपादक पंडत अखबारबहादुर प्रवेश करते और चुपचाप एक ओर खड़े हो जाते हैं)

बेचैनीराम—(उन्हें न देखकर) बतादो, बतादो, शीघ्र बतादो क्या समाज-सेवा, धर्म-सेवा, देश-सेवा, भेष-सेवा व भाषा-सेवा का यही कड़वा फल है जो मुझे हाथोंहाथ—पुनर्जन्म लेने से पहले ही—मिल रहा है ? न मेरे घर में कोई दिया जलानेवाला है, न कोई रोटी बनानेवाला !

(संपादकजी को खाँसी आती है ; वह उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं ; फिर भी कुछ खाँस देते हैं)

बेचैनीराम—(उधर ध्यान न देकर, सोचता हुआ) भारतवर्ष की जन-संख्या तेतीस करोड़ से ऊपर है, जिसमें हिंदू बाईस करोड़ से कम न होंगे, जिनमें ग्यारह करोड़ से कम स्त्रियाँ न होंगी ; जिनमें से छः करोड़ तो विवाह हो जाने के कारण, 'मातृवत् परदारेषु' की चलनी में छन

गईं। अब रह गईं पाँच करोड़। क्या इन पाँच करोड़ में से एक भी मेरे योग्य नहीं ? या यों कहूँ कि क्या मैं इनमें से एक के भी योग्य नहीं ? धिक्कार ! धिक्कार !! हैज़े की दवा विना मूल्य बाँटने का यह पुरस्कार ! सेवा-समिति का मेम्बर बनकर प्लेग के इतने मुर्दे ढोने के बाद भी मेरे लिये स्त्रियों का यह अकाल ! अछूतोद्धार-कमेटी व नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्य पर यह विपत्ति ! विधवा-सहायक-समिति में दो आने साल देने का यह करेला-जैसा फल ! (कुछ सोचकर) मेरे मित्र चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं; पर वे दुष्ट कुछ करते-धरते ही नहीं। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं ! मुझसे विना पूछे ही वे कहीं से लाकर एक परम सुंदरी, गुणवती, पढ़ी-लिखी कन्या मेरे गले क्यों नहीं मढ़ देते ? (सोचकर) सच पूछा जाय तो इसमें उन बेचारों का उतना दोष नहीं जितना समझदार कन्याओं का है। समझदार कन्याएँ भी कैसी मूर्ख हैं ? मेरे गुणों को देखकर उन सबको वैसे ही मेरे ऊपर टूट पड़ना चाहिए था। उनके माता-पिता भी कुछ कम मूर्ख नहीं। यदि कन्याएँ लजाती हैं तो वे ही कुछ आगे बढ़ें, मेरे पीछे पड़ जायँ, और अपनी-अपनी कन्याएँ मेरे सिर मढ़ने का एक बार प्रयत्न तो कर देखें। मैं कहता हूँ, उन्हें अवश्य सफलता होगी। वे हाथ-पैर पीटें, सो

न होकर उलटा हिसाब हो रहा है—कुए को प्यासे की खोज करनी पड़ रही है।

संपादक—(सामने आकर) अरे तो भई, तुमने कभी किसी से कुछ कहा भी तो हो। क्या किसी को बैठे-ठाले सपना होता है कि तुम धड़ासपातिनी के लिये ऊदबिलाव हो रहे हो?

बेचैनी०—(अपने को सँभालकर) क्या इसमें भी किसी से कुछ कहने की आवश्यकता है? री मूर्ख दुनिया, क्या तुझे अपने-आप इतनी मोटी बात भी नहीं सूझती? भला सोचने की बात है, क्या सूरज किसी से कहकर उदय होता है? क्या रात में तारे किसी से पूछकर निकलते हैं? क्या मोटर किसी से पूछकर बिगड़ती है? नदी किससे कहकर समुद्र की ओर बहती है? तुम लोग प्रकृति के भीतरी भेदों को न जानकर भी एडीटर, प्रोफ़ेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, टिकट-कलट्टर आदि बनते हो! तुम लोगों से कहीं अधिक बुद्धि पशुओं में है—मानो चाहे न मानो।

संपादक—यदि यह बात है तो मैं अब तुम्हारे लिये एक सुंदर कन्या खोजता हूँ—बस, मिली ही समझो। मैं तो कहता हूँ, यदि तुम स्त्रियों के विषय में अब तक अच्छे-अच्छे लेख लिखकर मेरे पत्र में छपाते रहते, तो भी उनसे आकृष्ट होकर कोई-न-कोई फँस ही जाती अब तक। ख़ैर, बस अब मिली ही समझो।

बेचैनी०—(ऊपरी झुँझलाहट दिखाकर) मैंने तुमसे कब कहा है ? मैंने तो केवल एक बात कही थी जो साधारण रूप से दुनिया में देखी जाती है। तुम किसी के लिये खोजो या न खोजो ; मैं तो, तुम जानते ही हो, दूसरी स्त्री की मृत्यु के बाद यह प्रतिज्ञा-सी कर चुका हूँ कि जहाँ तक हो सकेगा, विवाह न करूँगा। फिर भी यदि तुम लोग न मानोगे, तो देखा जायगा।

संपादक—तो अभी यह सब तुम अपने लिये नहीं कह रहे थे तो किसके लिये कह रहे थे ?

बेचैनी०—अजीब समझ है तुम्हारी ! एक मैं ही क्या, मेरे-जैसे न-जाने कितने लोग देश, समाज, धर्म आदि की सेवा करते हुए भी ऐसे ही बने हुए हैं। मेरा पूरा विश्वास है कि वे अवश्य अपना विवाह किया चाहते हैं। यदि उनके अनुरूप कोई सुंदर कन्या हो तो वे कर लें।

संपादक—चूल्हे में जाने दो उन्हें ! जब तुम नहीं करना चाहते तो मुझे इस विषय से कुछ सरोकार नहीं। अपने मन की बात साफ़-साफ़ कहो।

बेचैनी०—तुम भी खूब हो ! मैंने कब कहा कि मैं नहीं करना चाहता, या करना चाहता हूँ ?

संपादक—तुम्हारी बातों से तो यही प्रकट होता है।

बेचैनी०—मेरी बातों से क्या है, तुम अपनी बुद्धि से भी तो काम लो।

संपादक—नहीं भाई, इस मामले में दूसरे के लिये किसी को भी व्यर्थ अपनी बुद्धि से काम न लेना चाहिए ; क्योंकि बाद को दोनों ओर से बुराई आती है।

बेचैनी०—बुराई आती है मूर्खों के बीच में पड़ने से; बुद्धिमानों के बीच में पड़ने से बुराई नहीं आती।

संपादक—मान लो, बुद्धिमान् लोग करना ही न चाहें, तब ?

बेचैनी०—तो समाज को चाहिए कि बल-पूर्वक उनका विवाह करा दे। उन्हें किसी खूँटे से बाँध दे, वरना वे उच्छृंखल हो जायँगे और रस्सा तुड़ाकर भागने लगेंगे। इस बात को मास्तिष्क-विज्ञान के जाननेवाले अच्छी तरह समझते हैं। वे जल्दी मरेंगे ; क्योंकि डॉक्टरों ने यह बात डंके की चोट साबित कर दी है—और, डॉक्टरों ने भले ही साबित न भी की हो, पर मैंने अपने अनुभव से अच्छी तरह समझ ली है—कि विवाह न करनेवाला पुरुष, विवाह करलेनेवाले पुरुष से, और विवाह करनेवाली स्त्री, न करनेवाली से कहीं जल्दी मरती है, यदि उसे क्षयी न हो जाय, यानी उसको जिसके विषय में पहले कहा गया है। तुमको ऐसी-ऐसी बातें भी नहीं मालूम ! न-जाने तुम कैसे एडीटर हो !

संपादक—श्रीयुत वामन-शिवराम आपटे के लिखे अँगरेज़ी-संस्कृत-कोष में तो यह बात मुझे आज तक नहीं देख पड़ी; नहीं तो मैंने इसे अपने पत्र में कभी का छाप दिया होता। मैं तो स्वयं ही इस चिंता में रहता हूँ कि कहीं से कोई नया मसाला मिले तो उड़ा लूँ।

बेचैनी०—अच्छा, तो अब तो ज्ञात हो गई। बस, अब तुम झटपट इसे छाप डालो, और इस पर एक अच्छी-सी टिप्पणी देते हुए उसमें यह लिखो कि ऐसी दशा में, जब कि अविवाहित पुरुष अधिक मरते हैं, हम अपने पाठकों और पाठिकाओं को—देखो, 'पाठिकाओं' लिखना न भूलना—सलाह देते हैं कि अविवाहित तो अविवाहित, विवाहितों को भी विवाह करना चाहिए।

संपादक—यानी एक पुरुष को कई विवाह?

बेचैनी०—अर्थात् जिनकी स्त्री-रूपी नौका इस असार संसार-सागर में असमय ही डूब गई है, और जो इस सागर की लहरों में बेतरह छटपटा रहे हैं, उनको अपने प्राण बचाने और पार जाने के लिये किसी दूसरे की लड़की-रूपी लकड़ी की आवश्यकता है या नहीं? डूबते को तिनके का सहारा चाहिए या नहीं? तुम इतनी मोटी बात भी नहीं समझते?

संपादक—आप तो कहते हैं, विवाहिता स्त्रियाँ जल्दी मरती हैं—

बेचैनी०—हाँ, जब से वे दोनों मरीं, मेरी तो यही राय है।

संपादक—तो मान लीजिए, इस समाचार से क्वारी लड़कियाँ भड़क जायँ, और विवाह करने से मना कर दें, तब? क्योंकि अपनी जान सबको प्यारी होती है।

बेचैनी०—(हैरानी के साथ) तुम्हारे दिमाग़ में अजीब घुन लगा हुआ है! अरे तुम समाज की भलाई देखते हो या उन मूर्ख लड़कियों की चोचलेबाज़ी? तुम यह बात छापो ही मत कि विवाहिता लड़कियाँ जल्दी मर जाती हैं। तुम तो बस, यही छापो कि क्वारे पुरुष जल्दी मरते हैं।

संपादक—इससे क्या होगा?

बेचैनी०—इससे यही होगा कि कन्या-चर, सेवासमिति और पाठशालाओं में पढ़ने या पढ़ानेवाली लड़कियों का हृदय पिघलकर मोम हो जायगा, और उनकी सहानुभूति क्वारों की ओर झुक जायगी।

संपादक—तब क्या होगा?

बेचैनी०—तब किसी को ब्याह के ऐसे लाले न पड़ेंगे जैसे—(रुक जाता है)

संपादक—जैसे आपको पड़ रहे हैं।

बेचैनी०—(झुँझलाकर) फिर वही बात ! मुझे कोई मजबूर नहीं कर सकता। जो मेरी इच्छा होगी, करूँगा। बहुत संभव है, न भी करूँ।

संपादक—अरे यार, क्यों इतने बनते हो ? स्पष्ट क्यों नहीं कह देते ?

बेचैनी०—कहे कोई क्या ? तुम्हारा किसी को विश्वास हो तब न ?

संपादक—तो कैसे हो विश्वास ?

बेचैनी०—हो कैसे, अपने-आप ही सोचो।

संपादक—तुम्हारा मतलब यह है कि मैं तुम्हारे लिये एक विज्ञापन अपने पत्र में निकालूँ।

बेचैनी०—मैंने कभी नहीं कहा ; न मैं किसी का हाथ ही पकड़ता हूँ। पर यदि मेरा नाम उसमें छपा तो अच्छा न होगा।

संपादक—विश्वास रक्खो, तुम्हारा नाम उसमें भूलकर भी न छपने पावेगा, और न कोई यह जान सकेगा कि विज्ञापन किसके लिये है।

बेचैनी०—भला कहीं यह संभव है कि कोई यह भी न जान सके कि विज्ञापन किसके लिये है ? बस, इसीलिये इन बातों से घबराता हूँ।

संपादक—तुम घबराओ मत, यदि कभी भी कोई जान जाय तो मुझे फाँसी लगा देना।

बेचैनी०—अरे भई, मैंने माना कि मेरा नाम न होगा, तो इससे क्या ? मेरी गुणावली तो होगी ? मेरे-जैसे गुणों-वाला तो संसार में, बस, एक मैं ही हूँ, जिसे कि सब लोग जानते हैं। इसलिये, नाम न छपने पर भी, मेरी गुणावली छपे, और लोग ताड़ न जायँ, यह कभी हो ही नहीं सकता। मुझे तुम्हारी बात, इस रूप में जिसमें कि तुम कह रहे हो, स्वीकार नहीं।

संपादक—अरे बाबा, तो मैं अपनी गुणावली छपा दूँगा।

बेचैनी०—हाँ, यह हो सकता है।

संपादक—तो बस, मैं अपनी गुणावली छपा दूँगा, तुम निश्चिंत रहो।

बेचैनी०—(सोचकर) पर तुम्हारी आमदनी तो बहुत ही कम है; अच्छी लड़की न मिलेगी।

संपादक—शोक है तुम्हारी बुद्धि पर ! भला जब मुझे तुम्हारे लिये अपनी गुणावली छपाने में कोई आपत्ति नहीं, तो डॉक्टर साहब का स्वास्थ्य और इंजीनियर साहब की ऊपरी आमदनी छपाने में क्या रुकावट हो सकती है ?

बेचैनी०—(हर्ष के मारे उछलकर) तुमने बहुत ही अच्छी

सोची ! जो कहीं ऐसा किया जाय, तो फिर भला क्या कहना है ?

संपादक—इसमें अड़चन पड़ ही कौन-सी सकती है ? यह तो बिलकुल अपने हाथ की बात है ।

बेचैनी०—(हर्ष से गद्गद होकर) यार, मेरे मुँह से तो इस समय मारे ख़ुशी के बोल भी नहीं निकल रहा है । मैं कविता भी तो करता हूँ ।

संपादक—हाँ-हाँ, ठीक है; इस बात की तो याद ही नहीं रही थी, यद्यपि दिन-रात मेरे पत्र में वह छपती रहती है ।

बेचैनी०—(सोचता हुआ) पर उसे लोग—

संपादक—तुम ठीक कह रहे हो, मूर्ख लोग उसे कम पसंद करते हैं । उसके लिये—

बेचैनी०—उसके लिये बस गुप्तजी को रख लो ।

संपादक—बहुत ठीक । जब स्वास्थ्य के लिये डॉक्टर साहब, आमदनी के लिये इंजीनियर साहब और अटर-सटर बातों के लिये मैं हूँ, तो कविता के लिये गुप्तजी क्यों न लपेटे जायँ ?

बेचैनी०—और गद्य के लिये ?

संपादक—गद्य के लिये लुप्तजी ठीक रहेंगे । बस, क्या पूछना है ! अब तो तुम एक आदर्श 'वर' बन गए । तुम्हारी

जोड़ का आदर्श-मर्यादा पुरुषोत्तम 'वर' इस संसार में तो कहीं मिलने से रहा, उस संसार में भी शायद ही मिले।

बेचैनी०—(हर्ष और उत्सुकता से) क्यों जी, तब क्या होगा?

संपादक—कुछ पूछो मत; विज्ञापन के छपते ही भावी वधुएँ दौड़ी चली आवेंगी; पिंड छुड़ाना कठिन हो जायगा! "राजा के घर में मोतियों का अकाल!" यदि कुछ पहले ही कह देते, तो अब तक न-जाने कब के और कितने विवाह तुम्हारे करा दिए गए होते। संकोच-वश तुम्हारे तनिक देर कर देने से न-जाने कितनी लड़कियाँ पिछली सहालग में हाथ से निकल गईं। तुम सचमुच बहुत ही लज्जाशील हो।

बेचैनी०—(सोचता हुआ) इसमें संदेह नहीं, बड़ी अच्छी-अच्छी लड़कियाँ निकल गई होंगी। (ठंडी साँस लेकर) ख़ैर जो हुआ सो हुआ, देखो अब कोई न निकलने पावे।

संपादक—तो अब—

बेचैनी०—(सोचकर) और सुनो तो!

संपादक—क्या?

बेचैनी०—अरे मित्र, सुंदरता? सुंदरता?

संपादक—जब पद्य में गुप्तजी और गद्य में लुप्तजी लिए गए हैं तो सौंदर्य में सुप्तजी क्यों न लिए जायँ?

बेचैनी०—(हर्षित होकर) क्या कहना है ! तुम सचमुच 'संपादक' हो जो चारों ओर से अच्छा-अच्छा मसाला बटोर-कर यों मेरा संपादन कर रहे हो। तुम तो यार, सचमुच मुझे मानो विवाह-समाचार का विशेषांक बना रहे हो ! तुम्हारी सूझ अद्भुत है। उसका ठीक-ठीक पता मुझे, सच पूछो तो, आज लगा। भई, पहले तो नहीं मानता था, पर आज मैं तुम्हारा लोहा मान गया। तुम सचमुच बड़ी दूर की सोचते हो, और ठीक सोचते हो। भला यह बात न होती, तो तुम्हारा समाचार-पत्र कैसे इतने गुन-गाहकों को तुम्हारी ओर खींच लेता ! यद्यपि मुँह पर बड़ाई करना एक तरह से खुशामद समझा जाता है, पर सच तो यह है कि मैं तुम्हारी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता।

संपादक—(अकड़कर) सब तुम्हीं लोगों का आशी-र्वाद है।

बेचैनी०—तो बस, फिर अभी ऐसा विज्ञापन बना डालो कि जितने लड़कीवाले हैं सब लालायित होकर दौड़े चले आवें ; जो लड़केवाले हैं, वे अपने-अपने लड़कों को फटकारें कि दुष्टो, तुम लड़की क्यों न हुए, जो हम इस देवी-दुर्लभ वर से तुम्हारा ब्याह करके अपना मनुष्य-जन्म सफल कर लेते; और, जिनके अभी कोई बच्चा नहीं हुआ है, वे ईश्वर से यही प्रार्थना करें

कि झटपट हमारे लड़की ही हो, क्योंकि ऐसा सुंदर वर सदा बैठा नहीं रहेगा। ऐसा एक विज्ञापन बना तो डालो झटपट यार!

संपादक—अभी लो। बस, तुम्हारे कहने-भर की देर थी। (कागज-पेंसिल निकालकर लिखने लगता है)

बेचैनी०—और देखो, सब बातें आ जायँ, कोई छूटने न पावे।

संपादक—(लिखता-लिखता) ऐसा लो कि सृष्टि के आदि से अब तक संसार में जितने विवाह-विज्ञापन निकले हैं, उन सबसे इक्कीस, बल्कि बाईस।

बेचैनी०—ऐसा हो कि बस, हाँ—तेईस।

संपादक—(लिखता-लिखता) पूरा विराट् रूप लो।

बेचैनी०—विराट् रूप! ह-ह-ह-ह (हँसता है)

संपादक—और क्या?

"कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा;
भानमती ने कुनबा जोड़ा।"

सब मित्रों के गुण, कर्म, स्वभाव लेकर तुम्हें 'चों-चों का मुरब्बा' बनाए देता हूँ।

बेचैनी०—'चों-चों का मुरब्बा'! ह-ह-ह-ह (हँसता है) सचमुच अच्छा होता था। सभी नाटकों के अच्छे-अच्छे सीन

उसमें आ जाते थे। मैंने कई बार देखा है। वाह, क्या नाम है—'चों-चों का मुरब्बा'! इस 'चों-चों'-शब्द की मधुरता और सार्थकता को तो कोई देखे!

संपादक—लो, बन गया।

बेचैनी०—(आशा और उत्सुकता से) क्या बना, सुनाओ तो—क्या बना, सुनाओ तो?

संपादक—बुरा न मानना, उम्र में तुम्हारे छोटे भाई की लिया चाहता हूँ।

बेचैनी०—ख़ैर, कोई हानि नहीं, छोटे भाई की उम्र मेरी है, और मेरी छोटे भाई की। भाइयों में तो बड़ी-बड़ी और स्थायी वस्तुओं पर भी भेद-भाव न होना चाहिए, सो आयु तो ऐसी वस्तु है जो एक सेकिंड भी स्थायी नहीं रहती। हाँ, तो बस, अब जल्दी सुनाओ; क्योंकि अपने को क़ाबू में रखने की भी कोई सीमा होती है।

संपादक—लो सुनो, अभी तो यह ढाँचा-ही-ढाँचा है। असली विज्ञापन इसके बाद तैयार होगा। (पढ़ता है)

आवश्यकता है

एक अत्यंत सुंदर, सुशिक्षित, सुप्रसिद्ध, सुलेखक, सुकवि, सुस्वस्थ, सुसमृद्धिशाली लड़के के लिये एक अत्यंत रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता, विनम्रा, आज्ञाकारिणी साहित्य-

प्रेमिका सुकन्या की। लड़के की मासिक आय १०,००० रु० है। लड़का गद्य व पद्य लिखने में तो कुशल है ही, इंजीनियरी, डॉक्टरी, प्रोफ़ेसरी, एडीटरी आदि कलाओं में भी एक ही है। अपने घर में अवतार समझा जाता है। स्थावर व जंगम संपत्ति कई लाख की है—करोड़ कहना भी अत्युक्ति न होगी। घराना वेदों के समय का पुराना और लोक-परलोक में नामी है। लड़का, समाज-सुधारक होने के कारण, जाति-बंधन से मुक्त है; अर्थात् किसी भी जाति की कन्या ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। पत्र-व्यवहार फ़ोटो के साथ कीजिए। पता—"संपादक, बाँगड़ू-समाचार-कार्यालय।"

बेचैनी०—वैसे तो बहुत अच्छा बना और कोई बात इसमें झूठ भी न आने पाई, पर एक कसर रह गई।

संपादक—(अचरज से) वह क्या ?

बेचैनी०—'अत्यंत'-शब्द सभी गुणवाचक विशेषणों के पहले लगना चाहिए था; नहीं तो कोई समझ लेगा कि लड़का अत्यंत सुंदर तो है, पर 'अत्यंत सुप्रसिद्ध' नहीं है, 'अत्यंत सुकवि' नहीं है, इत्यादि।

संपादक—'सु' उपसर्ग अत्यंत का ही अर्थ दे रहा है।

बेचैनी०—दे रहा है, तो क्या हुआ ? फिर भी उसके

आगे 'अत्यंत' लगाना अच्छा होगा—लड़कीवालों पर और भी अधिक प्रभाव पड़ेगा, जैसा कि कहा है—"अधिकस्याधिकं फलम् ।"

संपादक—हर जगह 'अत्यंत' और 'सु' के पास-पास बैठने से भाषा-सौष्ठव में कमी आ जायगी ।

बेचैनी०—अजी मरा भाषा-सौष्ठव ! हम अपने विवाह की चिंता करें या भाषा-सौष्ठव को देखें ?

संपादक—अच्छा तो लो, लिखे देता हूँ । (लिखता है)

बेचैनी०—और उम्र ?—अवस्था ? अवस्था के विषय में कुछ नहीं लिखा ? छोटे भाई की—

संपादक—हाँ, फिर मैंने यह सोचा कि विवाह के विज्ञापनों में अवस्था के विषय में गोल हो जाना ही बुद्धिमानी है ।

बेचैनी०—यदि कोई पूछे तो ?

संपादक—कोई पूछेगा, तो लिख देंगे कि लड़के की अवस्था उसके छोटे भाई के बराबर है ।

बेचैनी०—बहुत ठीक कहा । (सोचता हुआ) इसमें गुप्तजी, लुप्तजी और सुप्तजी का नाम तो आया ही नहीं ?

संपादक—(अचरज से) अरे ! बिलकुल ही याद नहीं रही ! खैर, लो अब लिखे देता हूँ; विवाह के विषय में भूलों का होना कुछ अनहोनी बात नहीं ।

बेचैनी०—किस प्रकार ?

संपादक—सुना-सुनाकर लिखता है—

आवश्यकता है

सुप्तजी के समान अत्यंत सुंदर, लुप्तजी के समान—

बेचैनी०—एक काम करें—

संपादक—क्या ?

बेचैनी०—इसमें कामदेव का नाम अवश्य आना चाहिए।

संपादक—कहाँ ?

बेचैनी०—सुप्तजी के साथ-साथ।

संपादक—कैसे ?

बेचैनी०—यों कर दें—'सुप्तजी अथवा कामदेव के समान अत्यंत सुंदर'—

संपादक—कोई आवश्यकता तो है नहीं।

बेचैनी०—कर दो—कर दो।

संपादक—तुम्हारी इच्छा है तो लो, दूसरा ही लिखता हूँ। (लिखता है)

बेचैनी०—हाँ, सुनाते चलो—सुनाते चलो।

संपादक—लो, और लो (लिखता और सुनाता जाता है)—

आवश्यकता है

सुप्तजी अथवा कामदेव के समान अत्यंत सुसुंदर, लुप्तजी के

समान अत्यंत सुगद्य-लेखक, गुप्तजी के समान अत्यंत सुकवि, रावण के समान अत्यंत सुप्रसिद्ध, डॉक्टर साहब के समान अत्यंत सुस्वस्थ, इंजीनियर साहब के समान अत्यंत सुसमृद्धि-शाली, सुदामाजी के समान अत्यंत सुशिक्षित एक अत्यंत सुलड़के के लिये एक अत्यंत सुकन्या की, जो संपत्ति में लक्ष्मी के, सुंदरता में वाणासुरवाली उषा के, शिक्षा में सरस्वती के, विवाह से पहले प्रेम करने में रुक्मिणी या दमयंती के, आज्ञा-पालन में सीता के, पति-सेवा में सावित्री के, विरह-व्यथा सहने में राधा के समान हो। यदि कन्या लेखिका हो, तो बहुत अच्छा; क्योंकि उसके गद्य व पद्य लेख तुरंत ठीक किए जा सकेंगे। अवस्था १६ वर्ष से अधिक न हो। विवाह में समाज-सुधार का पूरा ध्यान रक्खा जायगा। लड़के की स्वतंत्र आय १०,४३१।=)॥ मासिक है। फ़ोटो के साथ पत्र-व्यवहार करने में अत्यंत शीघ्रता न करने से पछताना पड़ेगा। केवल वही महाशय पत्र-व्यवहार करने का कष्ट उठावें जिनकी कन्याओं में ऊपर लिखे गुण हों; दूसरे नहीं।

बेचैनी०—(हर्षित होकर) लो बोलो, कहाँ है कालिदास का बच्चा, जो कवि बना फिरता है? ऐसा खंड-काव्य लिख तो दे! (सहसा सोचने लगता है)

संपादक—क्यों?

बेचैनी०—कुछ नहीं, मैं यही सोचने लगा था कि काव्यों की भाँति कहीं इसे भी बनावटी या झूठा न समझ लिया जाय।

संपादक—तो ऐसा समझनेवाले नासमझों की लड़की से तुम भी कब विवाह करने लगे ?

बेचैनी०—ठीक है; क्योंकि माता-पिता के गुण, अवगुण संतान में कुछ-न-कुछ आ ही जाते हैं। यह बात तो अब साइंस से भी साबित हो गई है—बल्कि अब तो इस पर भी बहुत कुछ खोज हो चुकी है कि रूप-रंग में कब, किससे, किस प्रकार, किस तरह की समता आ जाती या हो जाती है। वाह, यह बात भी क्या समय पर सूझी है !

संपादक—सच है,इससे पूरा लाभ उठाना चाहिए। और, इसके लिये—

बेचैनी०—इसके लिये बस, यही किया जाय कि पहले किसी से विवाह की चर्चा न करके, विज्ञापन छपने के बाद, ज्यों ही पत्र आवें, त्यों ही तुरंत एक सिरे से लड़कियों के बापों को देख डाला जाय। इससे लड़कियों के गुण-कर्म-स्वभाव का अनुमान लगभग आधा तो हो ही जायगा।

संपादक—पर एक बात है; कीचड़ में कमल और कँटीले वृक्ष में गुलाब का फूल उगता है।

बेचैनी०—अपवाद कभी नियम नहीं हो सकता। हाँ, उसके लिये गुंजाइश छोड़ी जा सकती है।

संपादक—विवाह से पहले कन्या को भी तो देख लेना आवश्यक है?

बेचैनी०—अजी, विवाह के पहले क्या, कन्या को देखना तो विवाह के बाद भी आवश्यक है।

संपादक—यदि किसी ने कन्या दिखाने से इंकार किया तो?

बेचैनी०—उसकी माता को ही देख लेंगे। पिता को वैसे देख लिया, माता को ऐसे देख लिया, बस, कन्या का पूरा हाल मालूम हो गया!

संपादक—तो फिर विज्ञापन छपवा दिया जाय न?

बेचैनी०—(सोचता हुआ) क्या कहूँ, एक बात का खटका अभी होने लगा है।

संपादक—वह भी कह डालो।

बेचैनी०—जब लोगों को मालूम हो जायगा कि विज्ञापक महोदय न गुप्तजी हैं, न लुप्तजी हैं और न सुप्तजी—न डॉक्टर हैं, न इंजीनियर हैं और न सुदामाजी, तो सहसा उन्हें मेरा ही ध्यान हो आवेगा, और वे तुरंत ताड़ जायँगे कि यह विज्ञापन मेरे सिवा और किसी दूसरे का कभी हो ही नहीं सकता; मतलब यह कि बात खुल जायगी।

संपादक—तो फिर एक काम किया जाय।

बेचैनी०—वह क्या ?

संपादक—जहाँ तुम्हें कम लोग जानते हैं, या शायद ही कोई जानता हो—जैसे बंबई और बंगाल में—वहाँ तो ऐसा विज्ञापन छपवाया जाय जिससे लोगों को तुम पर संदेह ही न हो—क्योंकि वहाँ तुम्हें कम लोग जानते हैं, बल्कि शायद ही कोई जानता हो ; परंतु जहाँ तुम्हें बहुत लोग जानते या जान सकते हैं—जैसे युक्तप्रांत, बिहार और मध्यप्रदेश में—वहाँ दूसरे ढंग का विज्ञापन छपाया जाय, क्योंकि वहाँ तुम्हें बहुत लोग जानते या जान सकते हैं।

बेचैनी०—यार, कहाँ तक तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा के पुल बाँधे जायँ ! तुम तो सचमुच ग़ज़ब के पुतले हो। विधाता ने तुम्हारी बुद्धि को बहुत अवकाश के समय गढ़ा है।

संपादक—(अहंकार के साथ) न गढ़ा होता तो कचालू बेचता-बेचता आज संपादक कैसे बन गया होता ? ख़ैर, मैंने एक और भी तरकीब सोची है।

बेचैनी०—वह क्या ?

संपादक—दो तरह के विज्ञापन तो ये हुए, इनके अलावा और भी कई तरह के विवाह-विज्ञापन देकर हिंदोस्तान-भर के समाचार-पत्रों को पाट दिया जाय, तब देखें, आपकी भावी

वहूजी किधर छिपती हैं ? मैं कहता हूँ, उन्हें सामने आना पड़ेगा, आना पड़ेगा, आना पड़ेगा।

बेचैनी०—अवश्य, अवश्य, अवश्य; पर किस प्रकार के विज्ञापन ?

संपादक—पहला यह कि एक इंजीनियर के लिये कन्या की आवश्यकता है; गुण वही। रुपए के लोभी लड़कीवाले इस जाल में फँसेंगे। दूसरा यह कि एक डॉक्टर के लिये कन्या की आवश्यकता है; गुण वही। दिन-रात 'स्वास्थ्य'-'स्वास्थ्य' चिल्लानेवाले लड़कीवाले इस जाल में फँसेंगे। तीसरा यह कि एक गद्य-लेखक के लिये एक कन्या चाहिए; गुण वही। अपनी कन्याओं से गद्य लेख लिखानेवाले पिता इस जाल में फँसेंगे। चौथा यह कि एक पद्य-लेखक के लिये एक कन्या की आवश्यकता है; गुण वही। कविता करने या पढ़नेवालियों के पिता इस जाल में फँसेंगे। ऐसे ही सैकड़ों और भी विज्ञापन बन सकते हैं।

बेचैनी०—(हर्ष से उछलकर) अरे कुछ पूछो मत! इन विकट जालों में से कन्याएँ तो क्या, कन्याओं के बाप भी नहीं निकल सकेंगे! उनकी माताओं का तो कहना ही क्या है ?

संपादक—बस, फिर उन्हीं में से छाँट ली जायँगी।

बेचैनी०—बहुत ठीक, बहुत ठीक ।

संपादक—अप-टू-डेट यानी बी० ए०, एम्० ए० वालियाँ अपने घरवालों का कहा न-जाने मानती हैं या नहीं ? उनके लिये इस जाल में एक और भी दाना डालना पड़ेगा ।

बेचैनी०—वह क्या ?

संपादक—विज्ञापन में यह भी लिख दिया जायगा कि लड़का अपनी धर्मपत्नी के साथ योरप और अमेरिका की सैर किया चाहता है ।

बेचैनी०—(हर्ष से गद्‌गद होकर) ओह, अरे मुझे बेहोशी आई जाती है ! बड़ा विकट लालच है ! सब फँसेंगी, सब । और, सच पूछो तो हर्ज ही क्या है ? चले जायँगे । क्या हम जा नहीं सकते ।

संपादक—और फिर यह कि दहेज-वहेज का कोई प्रश्न नहीं !

बेचैनी०—इस बात को जानते ही कि दहेज नहीं माँगा जा रहा है, कान्यकुब्जों, बंगालियों और कायस्थ भाइयों की तो लार टपक पड़ेगी !

संपादक—अब मैं केवल यही सोच रहा हूँ—

बेचैनी०—तुम्हारे सोचने ने मुझे मारा ! हाँ, जल्दी कहो क्या सोच रहे हो अब तुम ?

संपादक—यही कि तुम्हारे पहले विवाहों की बात बिलकुल गुप्त ही रक्खी जाय।

बेचैनी०—और नहीं तो क्या ? क्या भूत पत्नियाँ मेरे सिर पर थोड़ही सवार हैं ? न वे मेरे पीछे कुछ इल्लत ही लगा गई हैं। दो बच्चे जो हुए थे, अपनी-अपनी माता का अनुसरण कर गए। आवश्यकता हो तो मैं बहस करके अपने को बाल-ब्रह्मचारी साबित कर सकता हूँ।

संपादक—सच पूछो तो यह भी अच्छा ही हुआ।

बेचैनी—हाँ, तो अब देर न करो। जल्दी जाकर आज ही इन विज्ञापनों का प्रबंध करो। क्योंकि मुझे आज रात-भर नींद नहीं आवेगी। इसके लिये मैं तुम्हें भी पूरा पुरस्कार दूँगा। (कुछ गंभीरता के साथ) जब तुम मुझे इस उलझन में फँसाना ही चाहते हो तो इसके लिये पूरा प्रयत्न करो। आदमी को चाहिए कि या तो किसी को—उसकी इच्छा के विरुद्ध—किसी झगड़े में डाले नहीं, और अगर डाले, तो मरते दम तक उसका साथ दे।

संपादक—अच्छा, तो मैं जाता हूँ। (जाने लगता है)

बेचैनी०—सुनो तो—

संपादक—(लौटकर) क्या ?

बेचैनी०—यही कि खूब सोच-समझकर और जल्दी—बस।

संपादक—विश्वास रक्खो, ऐसा ही किया जायगा ।

(जाने लगता है)

बेचैनी०—और सुनो तो—

संपादक—(लौटकर) क्या ?

बेचैनी०—बस यही कि अच्छे कुटुंब की, पढ़ी-लिखी, घर के काम में चतुर, देखने में अच्छी—कोई—

संपादक—ऐसी ही लो । (जाने लगता है)

बेचैनी०—और देखो—

संपादक—(लौटकर) क्या ?

बेचैनी०—बुद्धिमती हो, कहीं रद्दी-सद्दी माल न भेड़ देना ।

संपादक—भला कहीं ऐसा हो सकता है ?

(जाने लगता है)

बेचैनी०—सुनो तो ।

संपादक—(लौटकर) हाँ—

बेचैनी०—तुम जानते ही हो कि मैं तो करना चाहता नहीं हूँ, तुम्हीं करा रहे हो, इसलिये सारी जवाबदेही तुम्हीं पर है । कहीं ऐसा न हो कि जन्म-भर मुझे कहने को जगह रह जाय ।

संपादक—विश्वास रक्खो, ऐसा कभी नहीं होगा । आख़िर विश्वास दुनिया में कोई चीज़ है । (जाने लगता है)

बेचैनी०—सुनो तो—

संपादक—(लौटकर) हाँ—

बेचैनी०—आवश्यकता हो तो मैं देशी कपड़े छोड़कर विलायती कपड़े पहनने के लिये भी तैयार हूँ—अर्थात् बूट-सूट—सब।

संपादक—अच्छा। (जाने लगता है)

बेचैनी०—सुनो तो—

संपादक—हाँ—

बेचैनी०—तो तुम जानो।

संपादक—हाँ, हम जानें। (गया)

बेचैनी०—(हाथ जोड़कर) हे परमात्मा, मेरे जीवन में यह क्या होनेवाला है ? क्या मेरे सुखों का कभी अंत ही न होगा विवाह के बाद ? यह सब तेरी कृपा है। तू जैसे नचाता है वैसे ही नाचता हूँ। मेरा इसमें कोई दोष नहीं। जब तुम्हारे मन में यही है, तो मेरी भी तुमसे यही समयोचित प्रार्थना है—

(गीत)

प्रभो, करवा दो मेरा ब्याह ;
होता नहीं बिना बीबी के दुनिया में निर्वाह।
भोजन की चिन्ता मिट जावे, पानी की परवाह ;

चाह मिटे सब मेरे मन की, मिटे देह की दाह।
लगा रहूँ दिन-रात काम में, भरा रहे उत्साह ;
'वाह !वाह!' कह उठे जगत् सब, ऐसा करूँ निकाह।

दूसरा दृश्य

स्थान—दीवान बहादुर के घर का एक भाग

(एक पत्र लिए झुँझलाए हुए दीवान बहादुर का प्रवेश)

दीवान०—हरामज़ादे दो-दो कौड़ी की नौकरी के पीछे सड़ी गलियों में जूतियाँ चटकाते फिरते थे; मैंने नौकरी लगवाकर गधे से आदमी बनाया; उसके बदले में यह सलूक ! जाओ सालो, पंद्रह रुपिल्ली महीना पाकर भी अगर तुम मेरी लड़की से शादी करने में नाहीं-नुकर करते हो, तो मैं भी तुम्हें जूते की नोक पर मारता हूँ। कभी तुम्हारे साथ शादी न करूँगा, चाहे लड़की क्वारी ही रह जाय। ख़बरदार, अब जो कभी मुझे इसके लिये लिखा तो ! इन जाति-बिरादरीवालों को तो जूते-ही-जूते चखावे, और कुछ न करे। तुम्हारी दुम में रस्सा ! ठहरो तो—

(पत्र को पृथ्वी पर पटककर एक हाथ में जूता ले उससे पीटता हुआ) ऐसे जातिवालों को तो—भगवान जाने—कुत्तों से नुचवावे ; शहद में डबोकर लाल चींटियों में छोड़ दे।

(तहसीलदार साहब का प्रवेश; उन्हें न देखकर) चाँद हंतरा कर ; जीता ही दीवार में चिनवा दे। बस।

(जूता पहनकर पत्र को ठुकराकर खड़ा हो जाता है.)

तहसील०—कहिए दीवान बहादुर साहब—

दीवान०—(तहसीलदार से) कहिए अपनी ऐसी-तैसी—

तहसील०—आज तो आप—

दीवान०—जी हाँ, आज तो मैं—बस, कहे जाइए; आपको और काम ही क्या है ? न आपके कोई लड़की है, जिसके ब्याह की आपको रत्ती-भर चिन्ता हो। (पत्र की ओर देखकर) उल्लू के पट्ठे !

तहसील०—तो फिर बात क्या है ? कुछ तो बतलाइए !

दीवान०—बात यही है कि कोई दुष्ट नहीं मिलता।

तहसील०—'दुष्ट' नहीं मिलता ! तो क्या बाल्टीदेवी के लिये वर ?

दीवान०—और क्या आपका सर ?

तहसील०—भला आपके लिये लड़कों की क्या कमी ?

दीवान०—मेरे लिये नहीं जनाब, मेरी लड़की के लिये; होश में हैं या नहीं आप ?

तहसील०—जी, मेरा वही मतलब था।

दीवान०—जी में आता है कि बुढ़ापे में ईसाई हो जाऊँ।

तहसील०—आप तो समाज-सुधारक हैं।

दीवान०—जी हाँ, हूँ तो। पर नतीजा ?

तहसील०—तो फिर जातिवालों को तो मारिए गोली, जैसा कि पहले आप लेखों और व्याख्यानों में कहते रहे हैं, और लड़की का व्याह उसके अनुरूप किसी वर से कर दीजिए, चाहे वह किसी भी जाति का हो।

दीवान०—मैं आपसे यह कहता हूँ—तनिक आप भी सोचिए—कि इस लड़की को पढ़ाते-पढ़ाते मेरी चाँद गंजी हो गई; जितना धन बटोरा था, उसका आधा ही रह गया। इसकी मा मुझको इस इल्लत में फँसाकर आप स्वर्ग में मौज कर रही है!

तहसील०—(सुनी अनसुनी करके) आपने सच कहा, ईश्वर ने कोई जाति-पाँति नहीं बनाई, मनुष्यों ने बना ली थी, जिसकी केवल अब लीक पीटी जा रही है!

दीवान०—फिर भी इसके लिये कोई वर न मिला!

तहसील०—ऐसी भी क्या जाति-पाँति कि योग्य के सिर पर अयोग्य पैर रख रहा है!

दीवान०—न-जाने दुष्ट कहाँ सो रहे हैं?

तहसील०—इसी राक्षसी जाति-पाँति की बदौलत पुण्यात्माओं को दुष्टात्मा अपने से नीचा समझ रहे हैं! सारी हिंदू-जाति धोखे के पेड़ की डाल पर चढ़कर उस पर अपने आप ही झूठे घमंड का कुल्हाड़ा मार रही और दिन-पर-दिन नष्ट हो रही है—हँसती हुई!

दीवान०—जी वोही तो, मानो मेरी लड़की ही दुनिया में प्रतिदिन बड़ी हो रही है, लड़के कहीं बड़े ही नहीं हो रहे! इसलिये अकेले मुझे ही ब्याह की चिन्ता खाए डालती है, लड़केवालों के कान पर कहीं जूँ भी नहीं रेंगती! देखो तमाशा!

तहसील०—स्वामीजी ने हिंदू-जाति का रोग पहचाना था।

दीवान०—जब कि मैं रुपए देने को तैयार हूँ फिर भी कोई मूर्ख इधर नहीं फटकता!

तहसील०—वे तो 'सत्यार्थ-प्रकाश' में साफ़ लिख गए हैं कि जाति गुण-कर्म-स्वभाव से मानी जानी चाहिए।

दीवान०—कौन जानता है कि मैं जाति-पाँति का विचार करता हूँ? लोग तो मुझे समाज-सुधारक ही समझते हैं। फिर भी, हिंदुओं के दस-बारह करोड़ लड़कों में से मुझे एक भी नहीं मिल रहा है!

तहसील०—यदि कुछ दिन और यह जाति-पाँति का झगड़ा चला तो हिंदू-जाति निश्चय रसातल को चली जायगी।

दीवान०—भला सोचो तो, क्या किसी इक्केवाले से कर दूँ?

तहसील०—भला यह कौन-सा न्याय है कि योग्य लड़के को योग्य लड़की न मिले, और योग्य लड़की को योग्य लड़का!

दीवान०—हे भगवन्, ख़बरदार जो तूने अब कभी भी मुझे लड़की दी तो, वरना तू जानियो! (ठंडे होकर) तहसीलदार

साहब, आपने तो कह दिया; भला यह भी तो सोचिए कि जब अपनी ही जाति में नहीं मिल रहा, तो दूसरी जाति में कहाँ से मिलेगा ? जब अपने ही भाई साथ नहीं दे रहे, तो दूसरे क्यों देंगे ? सच बात तो यह है—

तहसील०—यही तो आपकी भूल है । हिंदुओं में तो सनातन से यही बात चली आ रही है कि भाई ही भाई का बुरा चीतता है; और जिससे किसी तरह का कोई संबंध नहीं, वही साथ देता है ! जहाँ अपने लोग जान लेने को तैयार हैं, वहाँ दूसरे बचाने के लिये भी तैयार हो जाते हैं ! यही कारण है कि यह जाति अभी तक मरी नहीं, और दूसरों के पैरों पर खड़ी होकर लष्टम्-पष्टम् चली जा रही है ।

दीवान०—अच्छा, अब इन बातों को जाने दीजिए ; यह बताइए कि लड़की का ब्याह कैसे हो ? वर कहाँ मिले ?

तहसील०—मैं सच कहता हूँ, बाल्टी-जैसी सुंदरी और सशीला कन्या के लिये विवाह की इच्छा रखनेवाले लड़कों को नंगे पैरों दौड़ आना चाहिए, और आपके हाथ जोड़कर और पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर आपसे प्रार्थना पर प्रार्थना करनी चाहिए। मैं लड़का होता तो मैं तो ऐसा ही करता।

दीवान०—आपका कहना ठीक है, लड़का होता तब तो

मैं भी ऐसा ही करता—पर अब क्या न होना चाहिए, क्या होना चाहिए था, और क्या हो रहा है, इस पर व्यर्थ तर्क-वितर्क न करके यह बतलाइए कि अब होना क्या चाहिए।

तहसील०—(सोचता हुआ) मेरी राय तो यह है कि इसमें कुछ बुराई नहीं है।

दीवान०—किसमें ?

तहसील०—(न सुनकर) मैं आपसे पूछता हूँ, 'स्वयंवर' और क्या था ? ऐसे समय में दुनिया यही करती आइ है।

दीवान०—ऐसे समय में दुनिया क्या करती आई है ? क्या दुनिया में कभी और भी किसी पर यह विपत्ति पड़ी है ? मैं तो इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं। यदि कभी किसी पर पड़ी होगी, तो अवश्य ही वह सिड़ी हो गया होगा, या अफ़ीम खाकर सो रहा होगा ।

तहसील०—(अपनी धुन में) बस, वही उपाय है।

दीवान०—कौन-सा ? अफ़ीम खा लूँ ?

तहसील०—जो अभी मैंने आपको बताया।

दीवान०—आपने तो मुझे कुछ भी नहीं बताया।

तहसील०—मैंने अभी कहा न कि वह काम यों किया जाय ?

दीवान०—आपने अभी कुछ भी नहीं कहा कि कौन-सा काम कैसे कर दिया जाय।

तहसील०—आजकल तो यह चाल ही चल पड़ी है, और सच पूछिए तो इसमें कोई हानि भी नहीं है।

दीवान०—सच पूछिए तो किसमें कोई भी हानि नहीं है?

तहसील०—समाचारपत्रों में छपाने में।

दीवान०—(चौंककर) हद हो गई! क्या मेरे कुनबे की बद-नामी कराने का इरादा है? खूब सोची! वाह! 'मुल्ला की दौड़ मसजिद तक'!

तहसील०—वह कोई आपके नाम से थोड़ही छपेगा?

दीवान०—तो क्या आपके नाम से छपेगा?

तहसील०—हानि ही क्या है?

दीवान०—बाप तो मैं, और विज्ञापन आपके नाम से छपे! यह भी एक ही कही!

तहसील०—ऐसा तो होता ही है; एक के लिये दूसरा तीसरे नाम से विज्ञापन छपाता है, जिससे चौथे को कभी यह पता ही न लगे कि यह किसने छपाया है।

दीवान०—जब यही नहीं पता लगता कि किसने छपाया है तो फिर उससे लाभ ही क्या हुआ? मैंने ऐसे

विज्ञापन देखे हैं, पर मैं उनका क़ायल नहीं। भला, गुमनाम विज्ञापन पर कौन ध्यान देगा? हुँः, विज्ञापन न हुआ, छायावाद की कविता हो गई जिसे कल्पित नाम से ही छपाने में शोभा है!

तहसील०—क्षमा कीजिए, आपको अभी इसका भेद मालूम नहीं। गुमनाम विज्ञापन पर बहुत-से गुमनाम लोग आकर्षित हो जाते हैं। पीछे यदि काम होता दीखा तो—एक दूसरे से पूरा परिचय हो जाता है। यदि दोनों एक दूसरे की सब बातें जानकर संतुष्ट हो जायँ, तो विवाह हो जाता है, वरना अपना-अपना रास्ता पकड़ते हैं।

दीवान०—तो क्या सचमुच ही आपकी राय है कि—

तहसील०—जी, मेरी तो सचमुच ही राय है कि—

दीवान०—आप इसमें कोई हानि नहीं देखते?

तहसील०—मैं तो इसमें कोई हानि नहीं देखता।

दीवान०—यह भी नहीं कि लोग समझेंगे कि अपनी जाति में हम कोई ऐसे-ही-वैसे हैं?

तहसील०—जब लोगों को पता ही नहीं चलेगा कि किसका विज्ञापन है, तो समझेगा कोई क्या?

दीवान०—अच्छा, तो फिर लिखिए।

तहसील०—किस नमूने का?

दीवान०—अब यह सब आप जानें।

तहसील०—(सोचता हुआ) ऐसे विज्ञापन तो नित्य छपते ही रहते हैं। (जेब में से 'बाँगड़-समाचार' का एक अंक निकालता है)

दीवान०—इसमें कहाँ से आया, यह तो मासिक पत्रिका है ?

तहसील०—नहीं, यह मासिक पत्रिका नहीं है, 'बाँगड़-समाचार' का विशेषांक है। दूसरे, अब तो मासिक पत्रिकाएँ भी इस प्रकार के विज्ञापन छापने लगी हैं।

दीवान०—लाओ देखूँ। (खोलता हुआ) वैसे हूँ तो मैं समाज-सुधारक, पर अब जाति-पाँति तोड़ने की बात सुनते ही न-जाने क्यों मेरा हृदय काँपने लगता है ?

तहसील०—बुढ़ापे की आमद के कारण दृढ़ निश्चय का स्थान धीरे-धीरे संशय छीन रहा है।

दीवान०—पर तो भी यदि कोई अच्छा वर मिल गया तो मैं उससे कर ही दूँगा।

तहसील०—मैं तो पहले ही कह चुका कि इसमें कोई हानि नहीं है।

दीवान०—(कुछ सोचकर, फिर प्रसन्न होकर) मैं देखता हूँ कि इसमें चतुराई की भी आवश्यकता है।

तहसील०—कैसी ?

दीवान०—मान लो, लड़का मुझे पसंद आ गया, तो मैं उससे कह दूँगा कि मेरी गुणवती लड़की केवल आपको ही हृदय से चाहती है, यदि आपने उससे विवाह न किया तो वह संखिया खाकर सो रहेगी।

तहसील०—यह आपने खूब सोची! इससे अवश्य ही उसका दिल पिघल जायगा।

दीवान०—यही नहीं, मैं लड़की से भी उसकी सखी द्वारा कहला दूँगा कि अमुक सज्जन तुम पर सच्चा प्रेम रखते हैं, और प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि यदि तुमसे विवाह न हुआ तो किसी भी दूसरी से न करके सीधा दक्षिणी आफ्रिका का टिकट कटा लेंगे।

तहसील०—वाह-वाह! वाह दीवान बहादुर साहब, वाह! कितनी दूर की सोची है! बस, यही तो आपकी तारीफ़ है।

दीवान०—जब मैंने सरकार को चकमा देकर दीवान-बहादुरी प्राप्त कर ली तो क्या मैं एक अनुभवहीन और भावुकता के कारण आधा-सिड़ी लड़का अपनी लड़की के लिये नहीं फँसा सकता था! वह तो यह कहो कि अपनी ही कुछ मानसिक दुर्बलता के कारण अभी तक जाति-पाँति के जाल में फँसा हुआ था, और बाहर निकलने का

कोई मार्ग न मिलने से छटपटा रहा था। अब यह विज्ञापन का मार्ग बहुत ही बढ़िया मिला।

तहसील०—खूब !

दीवान०—बल्कि मैं तो यह सोचता हूँ कि लड़की से भी पत्र लिखवा दूँगा। इसका भी असर लड़के पर—

तहसील०—अजी, क्या पूछते हैं !

दीवान०—मेरे मन का लड़का मिल जाना चाहिए; बस, इतनी ही बात है।

तहसील०—ठीक है, आपने अच्छी सोची।

दीवान०—(समाचार-पत्र पर दृष्टि डालते ही) लो ! 'राम मिले, और सो भी पैरों' ! एक विज्ञापन तो यह रहा।

तहसील०—क्या है, पढ़िए तो ?

दीवान०—बहुत बड़ा है; बिना चश्मे के इतना बड़ा मैं पढ़ न सकूँगा। लीजिए, आप ही पढ़िए।

तहसील०—लाइए। (पढ़ता है, दीवान बहादुर भी साथ-साथ पढ़ने का प्रयत्न करते हैं, पर पीछे रह-रह जाते हैं; दोनों पढ़ते-पढ़ते एक दूसरे की ओर देखते और हाथ से संकेत करते जाते हैं)

आवश्यकता है

कामदेव के समान एक अत्यंत सुसुंदर, अत्यंत सुशिक्षित, अत्यंत सुप्रसिद्ध, अत्यंत सुलेखक, अत्यंत सुकवि, अत्यंत

सुस्वस्थ, अत्यंत सुसमृद्धिशाली, अत्यंत सुलड़के के लिये, एक अत्यंत सुरूपवती, अत्यंत सुगुणवती, अत्यंत सुशिक्षिता, अत्यंत विनम्रा, अत्यंत मृदु-भाषिणी, अत्यंत आज्ञाकारिणी, अत्यंत साहित्य-प्रेमिका, अत्यंत सुकन्या की। लड़का गद्य व पद्य लिखने में अत्यंत कुशल तो है ही, इंजीनियरी, डॉक्टरी, प्रोफ़ेसरी, एडीटरी, टिकट-कलट्टरी आदि विद्याएँ भी अत्यंत जानता है। स्थावर व जंगम संपत्ति कई लाख की है; घराना एशिया-भर में नामी है; मासिक आय दस हज़ार रुपए, ढाई आने की है। अत्यंत समाज-सुधारक होने के कारण जाति-बंधन से अत्यंत मुक्त है, अर्थात् किसी भी जाति की कन्या अत्यंत ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। विवाह के बाद लड़का अपनी धर्मपत्नी को लेकर विलायत जाने का विचार रखता है। ससुर-पद के इच्छुकों के लिये फ़ोटो सहित पत्र-व्यवहार करना अनिवार्य है। पता—मार्फ़त, संपादक, बाँगड़ू-समाचार।

तहसील०—बस, ऐसा ही विज्ञापन बना दिया जाय।

दीवान०—और मैं यह पूछता हूँ कि यही लड़का क्या बुरा रहेगा? इसी से क्यों न पत्र-व्यवहार प्रारंभ किया जाय!

तहसील०—बेशक, कोई हानि नहीं है।

दीवान०—दूसरे, लड़का नहीं तो कम-से-कम समाचार-पत्र

तो इसी शहर का है। सब बातों का पता लगा लिया जायगा। जहाँ संपादक को मिठाई खाने को डेढ़ आना पैसा दिया, और उसने सारा भेद बताया !

तहसील०—सच तो है।

दीवान०—अजी, मुझे तो लड़के से मतलब; (विज्ञापन देखता हुआ) कामदेव के समान सुंदर न होगा तो महादेव के समान तो सुंदर होगा। होना चाहिए लड़का; बस।

तहसील०—जी, और क्या ?

दीवान०—और मेरी लड़की—यद्यपि वह बेचारी सदा सच बोलनेवाली और सुशीला है, पर तो भी—(तहसीलदार के कान में कुछ कहता है; तहसीलदार चौंककर और उछलकर अलग जा खड़ा होता है और दीवान बहादुर की ओर, जल्दी-जल्दी साँस लेता हुआ, अचरज से देखता है)

तहसील०—यह बात है ?

दीवान०—आपको मेरी सौगंद है, किसी से कहिएगा मत—भूलकर भी।

तहसील०—भला कहीं ऐसा हो सकता है ? आप भी क्या बातें करते हैं ! अच्छा, तो अब देर करना ठीक नहीं। इस पत्र के संपादक को एक पत्र जल्दी लिख दिया जाय; क्योंकि अपने ही शहर का है, इसलिये पूरा हाल भी ज्ञात हो जायगा

कि कौन है, कैसा है। (सोचकर) लड़का भी यहीं का दीखता है, वरना संपादक की मार्फ़त उत्तर न माँगा जाता।

दीवान०—तो और भी अच्छा है। तो पत्र किसके नाम से—

तहसील०—फिर वही। आप घबराइए मत। मेरे नाम से, और किसके नाम से?

दीवान०—और विवाह के पीछे वह बात जान लेने पर लड़का कचहरी-दरबार करे तो?

तहसील०—किया करे; फिर क्या हो सकता है—'जो बिंध गया सो मोती।'

दीवान०—यदि छोड़ दे?

तहसील०—हिंदू-लड़कियों के भाग्य में लिखा ही यह है कि जन्म-भर उनका भविष्य दूसरों की मुट्ठी में बना रहे। यदि उनको यह जन्म-भर की काल-कोठरी पसंद नहीं थी, तो उन्हें हिंदुओं के यहाँ जन्म ही न लेना चाहिए था। आपको तो इस बात की शंका करनी ही नहीं चाहिए; क्योंकि लड़की में गुण ऐसे हैं कि वे सब बातें—

दीवान०—बस, तो अब जल्दी कीजिए।

तहसील०—जवाब ऐसा होना चाहिए—

दीवान०—कि हमारे यहाँ एक बहुत अच्छी लड़की है,

झटपट विवाह करना हो तो आ जाओ।

तहसील०—नहीं।

दीवान०—क्यों ?

तहसील०—यही तो आप नहीं जानते। विवाह-संबंधी बातों में कुछ टेढ़ापन रखना आवश्यक होता है। अपनी बहुत इच्छा दिखाने से काम बिगड़ जाता है। इस विषय में तो उदासीनता ही सफलता की कुंजी है। इस बात को न जानकर बहुत-से सीधे-सच्चे लोग भावुकता या उतावलेपन में अपना काम बिगाड़ बैठते हैं।

दीवान—०अजीब बात कह रहे हैं आप !

तहसील०—हाँ, पर है यह सच।

दीवान०—तो फिर क्या लिखिएगा ?

तहसील०—देखते जाइए। (लिखता और सुनाता जाता है)

"महाशय,

आपके बाँगड़ू-समाचार में आपके मित्र का विवाह-संबंधी विज्ञापन पढ़ा। मेरे एक अत्यंत धनी मित्र की एक कन्या है, पर वह इतनी रूपवती, गुणवती, सुशीला, सुंदरी और सुशिक्षिता है कि आपके मित्र को शायद ही पसंद करे। यदि कदाचित् कर ले, तो आपके मित्र का भाग्य। मेरी इतनी अवस्था हुई, और मेरे भी कई लड़कियाँ हुईं, पर मैंने ऐसी

सर्वगुण-संपन्ना कन्या आज तक स्वप्न में भी नहीं देखी। मेरे मित्र, अर्थात् उस कन्या के पिता, समाज-सुधार के पक्ष में तो हैं, पर अंधाधुंध नहीं। संभव है, पहले तो वही आपके मित्र से संबंध करना स्वीकार न करें। यह पत्र मैं केवल अपने मन की प्रेरणा से लिख रहा हूँ, अतएव आप इसे बिलकुल ही प्राइवेट समझिएगा। यदि आप 'टिड्ढा-निवास', मोहल्ला रकाबगंज में कल सबेरे ६ बजे अपने मित्र के साथ आकर मुझसे भेट करें, तो इस विषय में मैं कुछ बातचीत कर सकता हूँ, जिसे आप लोगों को गुप्त रखने का वचन देना पड़ेगा। इस विषय में पत्र भेजने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि व्यर्थ के पत्र-व्यवहार के लिये मेरे पास समय नहीं।"

दीवान०—अरे! यह आपने क्या किया?

तहसील०—क्यों?

दीवान—इससे तो बना-बनाया काम बिगड़ जायगा—वह आता होगा, तो भी न आवेगा।

तहसील०—(हँसकर) यह आपने कैसे जाना?

दीवान०—कैसे जाना? ऐसे रूखे और दो-टूक बात से भरे पत्र से उसके आत्माभिमान पर भारी चोट लगेगी, और भीष्म की तरह वह प्रतिज्ञा कर लेगा कि चाहे अविवाहित

रह जाऊँ, पर इस कन्या के लिये कभी बातचीत भी न करूँगा। पहले एक बार आने तो दीजिए ; फिर तो जो मैं आपसे कह चुका हूँ, उन्हीं तरकीबों से फँसा लेंगे।

तहसील०—(हँसकर) आपने आत्माभिमान की एक ही कही ! जब कोई युवक विवाह करने के लिये उत्सुक होता है तो आत्माभिमान और ऐंठ को उसे शीघ्र ही तिलांजलि दे देनी पड़ती है। विवाह की उम्मेदवारी के मैदान में आते समय वह अपनी सारी समझदारी को छप्पर पर रख आता है।

दीवान०—सच ?

तहसील०—जी। वह सहनशीलता और भलमनसाहत की मूर्ति बन जाता है। यहाँ तक कि अपनी विशेषताओं को भी—जिनके लिये वह सदा गर्व किया करता था—इस-लिये छिपाने और दबाने का यत्न करता है कि लड़कीवालों को कहीं वे बुरी न लगें।

दीवान०—ख़ूब !

तहसील०—उसकी बात-बात में नम्रता टपकने लगती है। बुरी-भली बात सुनना तो क्या, यदि दो तमाचे भी उसके गालों पर जड़ दिए जायँ तो भी वह कुछ न कहेगा, मुस-कराता ही रहेगा !

दीवान०—क्या सचमुच वह इस तरह अपने को खो बैठता है ?

तहसील०—यों समझिए कि विवाह की उत्कंठा भी बहुत-से मानसिक मैलों के धोने की प्रबल धारा है ; इस धारा की प्रबलता को उत्कंठा की प्रबलता से नापिए। आप स्वयं ही कह चुके हैं कि भावुकता के कारण आदमी आधा सिड़ी हो जाता है।

दीवान०—मैंने माना, पर विवाह के लिये अपमान—

तहसील०—जी हाँ। जैसे-जैसे आप विवाहार्थी को ठुकराइएगा वैसे-ही-वैसे वह आपके सामने गिड़गिड़ाएगा। यदि आप झट राजी हो जायँगे, या वह किसी तरह यह जान लेगा कि आपको आवश्यकता है, तो बस, फिर तन जायगा, जिसका परिणाम सदा उलटा होगा।

दीवान०—(अचरज से) यह सब आप क्या कह रहे हैं ? क्या विवाह की उम्मेदवारी की गंगा सदा उलटी ही बहती है ? इतना तो मैंने न समझा था।

तहसील०—जी हाँ, बात तो यही है। यों हरएक नियम के कुछ अपवाद भी होते ही हैं।

दीवान०—अच्छा भाई साहब, तो जैसी आपकी इच्छा हो वसा कीजिए; मुझे तो अपने काम से काम है। मैंने तो न कभी

उम्मेदवारी की और न मैं जानूँ। लड़का हाथ से न निकल जाय, इसी की चिन्ता है; क्योंकि (समाचारपत्र पढ़ता हुआ) जैसे-जैसे मैं इस विज्ञापन को पढ़ता हूँ वैसे-ही-वैसे मेरे हृदय में यह बात जमती जाती है कि मेरी लड़की के लिये यही लड़का सबसे ठीक रहेगा, ऐसा दूसरा लड़का मुझे कहीं न मिलेगा।

तहसील०—ठीक है, आप यही सोचे जाइए, और मेरे पत्र को बार-बार पढ़कर वह लड़का भी यही सोचे जाय कि जैसे बने वैसे इसी कन्या से व्याह किया जाय; क्योंकि इससे बढ़कर कन्या पृथ्वी पर कहीं भी न मिलेगी। रही बेचारी लड़की, सो जो कहीं उसे पता चल गया कि आपने उसके लिये वह वर सोचा है, तो उसे भी संसार में फिर उससे बढ़कर कोई वर नहीं दीखेगा। उसका खाना-पीना, सोना-बैठना, पढ़ना-लिखना सब छूट जायगा। विवाह के खेल में यही सब बातें होती हैं, यद्यपि यह सब जानते हैं कि सौंदर्य या गुण कहीं एक ही जगह इकट्ठे नहीं हैं, संसारभर में बिखरे हुए हैं और सब कहीं पाए जाते हैं।

दीवान०—तब तो सचमुच अजीब खेल है यह विवाह का!

तहसील०—और नहीं तो क्या।

दीवान०—तो एक बात तो बताइए। आपने पता तो मेरे

घर का दिया है; यदि वह आया, तो मैं उससे क्या बातें करूँगा ? आप उस समय न-जाने कहाँ होंगे ?

तहसील०—मैं सबेरे ही आपको पार्क में मिल जाऊँगा, और वहीं से आपके साथ हो लूँगा।

दीवान०—कल तो मैं घूमने जाना नहीं चाहता था।

तहसील०—क्यों ?

दीवान०—मान लो, वह जल्दी आवे, और यहाँ किसी के न होने पर लौट जाय ?

तहसील०—इन सब बातों को छोड़िए। विश्वास रखिए कि यदि यहाँ कोई न भी होगा, तो भी वह जब तक हम लोग लौटकर न आ जायँगे, बुत की तरह बैठ रहेगा। अच्छा, तो मैं अब जाकर यह पत्र आदमी के हाथ भिजवाए देता हूँ, या डाक से, जैसे हो सका। (जाने लगता है)

दीवान०—सुनिए तो—

तहसील०—हाँ—

दीवान०—लड़का है तो अच्छा, कहीं हाथ से न निकल जाय।

तहसील०—आप विश्वास रखिए, ऐसा न होगा।

दीवान०—जैसे बने वैसे मामला पटा लेना चाहिए।

तहसील०—ऐसा ही होगा ; आप घबराइए मत ।

दीवान०—मैं धन-संपदा भी कुछ कम न दूँगा; यह बात उससे स्पष्ट कह देनी चाहिए ।

तहसील०—यह बात उसे अवश्य जँचा दी जायगी।

दीवान०—बहुत रूखी बातें न कीजिएगा जिनसे उसका दिल दुख जाय और वह बुरा मानकर चला जाय ; क्योंकि कबीरदासजी कह गए हैं कि—

"मीठी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ;
औरन कों सीतल करे, आपहु सीतल होय।"

तहसील०—मैं क्या कोई सिड़ी हूँ ? (जाने लगता है)

दीवान०—हाँ, सुनिए तो—

तहसील०—जी ?

दीवान०—कहीं ऐसा न हो जाय कि—

"का बरषा जब कृषी सुखाने ;
समय चूकि पुनि का पछिताने ?"

तहसील०—ऐसा कभी न होगा । (जाने लगता है)

दीवान०—देखिए—

तहसील०—जी ।

दीवान०—कहीं रहीम कवि की यह बात न भूल जाइ-एगा कि—

"गुनतें लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि ;
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू कौ वाढ़ि ?"

तहसील०—आपका कहना ठीक है ; मैं पूरा ध्यान रक्खूँगा। (गया)

दीवान०—जो कहीं यह मामला पट जाय ! (हाथ जोड़कर) हे जगत्पिता, तूने ही यह कन्या दी है, अब तू ही इसका बेड़ा पार लगा—पहले समय में एक बार जैसे तूने सोलह सहस्र एक सौ आठ दुखिया कन्याओं का बेड़ा पार लगाया था, बस, उसी प्रकार। मेरी तुझसे यही प्राथना है कि—

(गाना)

मिले इस कन्या को वर एक ;
सीधा-सच्चा, भोला-भाला, चलता-पुरजा नेक।
बात न करे देश-भक्तों से, खोवे नहीं विवेक ;
डिप्टीगीरी करे रौब से, रक्खे कुल की टेक।
लेकर राय धर्म-पत्नी की, साधे काम अनेक ;
दोनों सुख से रहें सदा ही, वह हलवा यह केक।

तीसरा दृश्य

स्थान—विक्टोरिया पार्क

(बेचैनीराम अकेले घूम रहे हैं)

बेचैनी०—देख लिया, खूब देख लिया ! हे विचित्र संसार, मैंने तुझे अच्छी तरह समझ लिया। तू केवल धोखे से भरा हुआ है धोखे से। दूर न जाकर इस दुष्ट अखबार बहादुर को ही देखो ! बड़ा संपादक की दुम बना फिरता है ! मैं तो करना नहीं चाहता था; अपने आप ही तो विवाह के लिये पीछे पड़-पड़कर विज्ञापन लिखा लिया और कतर-ब्योंत करके अपने पत्र में छाप दिया, और अब दुष्ट बार-बार सुट्ट खींच जाता है ! कल साँझ को सात बजे आया; बातें मार-मूरकर आठ बजे चला गया ! उसके बाद साढ़े आठ बजे तक सूरत नहीं दिखाई ! सबेरा हुए तीन घंटे हो चुके हैं, तो भी आपने अभी तक केवल दो ही बार दर्शन दिए हैं ! और सो भी एक-एक घंटे के ही लिये ! इधर यहाँ चिन्ता के मारे ढेर हुआ जाता है, उधर आप यों ईद के चाँद हो रहे हैं ! मानो मैं आपकी खुशामद करता और हा हा खाता हूँ कि आप मेरा यह काम करा ही दीजिए ! उन विज्ञापनों के जो उत्तर आए होंगे उन्हें लेने के

लिये आप न-जाने कितनी देर से गए हुए हैं! तीन-चार घंटे तो शायद होगए होंगे? न-जाने समुद्र-पार गए हुए हैं या स्वर्ग में! 'ऐडीटरी!' 'ऐडीटरी!' धूल करेगा ऐडीटरी! आने दो अब की बार, मैं भी कैसा लताड़ता हूँ। (हाँफते हुए संपादक का, पत्र लिए हुए प्रवेश) ओहो, आ गए! तुम, यार, मेरी जान लोगे, और कुछ न होगा। भला, कब का मुझे खड़ा कर गए हो, सोचो तो! (हाथ बढ़ाकर) लाओ, जल्दी लाओ, देखूँ—

संपादक—अरे भई, ठहरो; खोलने दो; छीने क्यों लेते हो! अभी पंद्रह मिनट हुए तभी तो गया था; ऐसी कितनी देर हो गई जो व्यर्थ उलाहना दे रहे हो? दौड़ता हुआ दफ़्तर गया, संदूक खोली, तब वहाँ से यह सब लेकर सरपट दौड़ा चला आ रहा हूँ, और फिर भी कहते हो कि देर हो गई! कौंसिल की मेम्बरी के उम्मेदवारों की भाँति क्या विवाहार्थी भी सिड़ी हो जाते हैं?

बेचैनी०—अच्छा तो अब व्यर्थ की बहस न करो, जल्दी-जल्दी आया करो; जल्दी से खोलो चिट्ठियाँ। (ऊपर देख कर हाथ जोड़ता हुआ) हे भगवान, तू ही है!

संपादक—(बंडल से बुरी तरह झगड़ता हुआ) साला, खुलता ही नहीं है, न-जाने कैसी गाँठ लग गई है!

बेचैनी०—तुम तो हो सिड़ी, जो छदाम की रस्सी की

ख़ुशामद-सी कर रहे हो; तोड़कर अलग करो। (अध खुले बंडल में से कई पत्र खींच लेता और पढ़ने लगता है)

"अज़ दफ़्तर जनाब ज़िला मजिस्ट्रेट साहब—

१५ तारीख़ के 'वाँगड़ू-समाचार' में हिंदू-मुसलिम-फ़साद पर जो आपने अपनी राय ज़ाहिर की है, उसके बारे में आप कल २० तारीख़, माह सितंबर, को दोपहर के १२ बजे साहब मजिस्ट्रेट की कोठी पर हाज़िर हूजिए।

बहुक्म जनाब ज़िला मजिस्ट्रेट साहब बहादुर।"

संपादक—(घबड़ाकर) अरे! २० तारीख़ तो आज ही है! क्या आज ही जाना होगा? देखूँ तो? (पत्र लेकर पढ़ता है)

बेचैनी०—(दूसरा पत्र खोलकर पढ़ता है)

"अज़ दफ़्तर बाबू बुभुक्षाप्रसाद साहब एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, वकील हाई कोर्ट।

हस्ब हिदायत अपने मवक्किल दारोग़ा कचूमरनिकालसिंह साहब, थाना लूटगंज, आपको इत्तिला दी जाती है कि आपने अपने अख़बार के ८ तारीख़वाले परचे में जो चंद बातें मेरे मवक्किल की निस्बत छापी हैं, वे क़तई बेबुनियाद हैं और उनसे मेरे मवक्किल की सख़्त तौहीन हुई है व उसको ज़ाती नुक़सान भी काफ़ी पहुँचा है। अब आप आज से एक हफ़्ते के अंदर या तो चार हज़ार रुपए बतौर हर्जाना वास्ते मेरे मवक्किल मेरे

दफ़्तर में जमा कराइए वरना आप पर दीवानी व फ़ौजदारी में क़ानूनी कार्रवाई की जायगी।" (झुँझलाकर पत्र फेंकता है, और संपादक जल्दी से उठाकर पढ़ने लगता है)

बेचैनी०—विवाह के विज्ञापन के ऐसे-ऐसे जवाब! यह सब तुम्हारी शैतानी है।

संपादक—(घबड़ाकर) यह दूसरी बला और भी लग गई! संपादक बनने में यह झगड़ा है; आए दिन कोई-न-कोई विपत्ति सिर पर सवार रहती है।

बेचैनी०—इतनी देर में तो लौटे और न-जाने क्या ईंट-पत्थर ले आए! तुम्हारा तो बाल-विवाह हुआ था, सो तुम क्या जानो कि मुझ पर क्या बीत रही है?

संपादक—मैं पूछता हूँ कि कलट्टर साहब तो कलट्टर साहब, दारोग़ाजी भी जान को आ गए? क्या कहूँ, कहीं दूसरी जगह दस की भी मिले तो ऐसी ऐडीटरी को धता भेज दूँ। खोमचा तो मुझसे अब बेचा नहीं जायगा। क्या करूँ?

बेचैनी०—मैंने माना कि मेरे भी दो बाल-विवाह हो चुके हैं, पर इससे क्या? जब मुझे उनकी याद ही भूल चुकी है तो क्यों न मैं अपने को बाल-ब्रह्मचारी समझूँ? इस बात पर भले ही कोई बहस कर ले; मैं तैयार हूँ।

संपादक—अब किसी झूठों के बादशाह की खुशामद करके इस नोटिस का उत्तर भी दिलाना ही पड़ेगा। (सोचकर) जो हार गए तो गए जेल! अब की बार पीछा छूटे तो इस झगड़े को साष्टांग प्रणाम करके—और कुछ न मिले तो—फाँवड़ा और डलिया ही सँभालूँ। अपना मन मारकर खोमचा भी बेच लूँगा पर संपादकी अब न करूँगा!

बेचैनी०—बारात में कितने आदमी जायँगे, कितना रुपया खर्च होगा—इन सब बातों का, और लेन-देन का झगड़ा, पीछे से, लड़की के पिता की इच्छा के अनुसार भी तय हो सकता है। तुम पत्र तो लाते! तुम बड़े ही लापरवाह हो।

संपादक—लापरवाही की इसमें क्या बात है? तुम्हीं सोचो; हिंदू-मुस्लिम-झगड़े के संबंध में सच-सच बात लिख देने पर भी मुझे तो यों बुलाकर धमकाते हैं, और मियाँ ग़ाज़ी-ग़ुलाम से कुछ नहीं कहते, जो सदा अपने पत्र में हिंदुओं के विरुद्ध विष उगला करता है!

बेचैनी०—कोई भले ही किसी के विरुद्ध विष उगले; मैं तो स्पष्ट कहे देता हूँ कि समाज-सुधार का पक्षपाती हूँ; बहुत-सी इधर-उधर की बातें मुझे पसंद नहीं हैं। यदि न बनी तो मेरे लिये लड़कियाँ बहुत, उसके लिये लड़के बहुत; बस।

संपादक—गया था विवाह-विज्ञापन के उत्तर लेने, और ले आया यह ऊट-पटाँग ! तो चलो, मेरे दफ़्तर ही में चलो न ? वहीं पढ़ लेना।

बेचैनी०—तुम्हारी बुद्धि पर भी अजीब पाला पड़ा है ! वहाँ इतने सारे आदमियों में मेरी हँसी कराओगे ? सब कोई जान लेंगे कि यह विवाह करना चाहता है।

संपादक—अजी तनिक से अपराध पर जान-वान तो ख़ैर क्या लेंगे, यों ही डाट-फटकारकर छोड़ देंगे। बहुत करेंगे कुछ दिनों के लिये जेलख़ाने भेज देंगे। मेरा दुर्भाग्य !

बेचैनी०—मैं अपनी ही कह रहा हूँ, तुम अपनी ही बक रहे हो—'कहे खेत की, सुने खलियान की।'

संपादक—हाँ, क्या कहा था तुमने ? तो इसमें लज्जा की क्या बात है ? आख़िर आदमी ही तो ब्याह करते हैं।

बेचैनी०—तुम भी ख़ूब हो ! 'सूत न कपास, कोलिया से लठालठी'—अभी कहीं हुआ है ही नहीं, और, लोग सो जान ही लें ! मैं तो चाहता हूँ कि विवाह के बाद भी बहुतों को ज्ञात न हो कि मैंने विवाह किया है। कम-से-कम मेरे सामने वे इस विषय की चर्चा न करें।

संपादक—और फिर मुझे आज ही मजिस्ट्रेट के यहाँ भी जाना है। चलो-चलो, वहीं कमरे में बैठकर अकेले में सलाह

कर लेंगे। एक आदमी को बाहर बैठा देंगे जिसमें कोई अंदर न आने पावे। या फिर यहीं चले आएँगे।

बेचैनी०—नहीं मानते हो तो चलो। (दोनों गए)

(दूसरी ओर से दीवान बहादुर व तहसीलदार का प्रवेश)

तहसील०—हाँ, तो इसीलिये कल मैंने वह पत्र आदमी के हाथों न भेजकर डाक द्वारा भेजना उचित समझा कि कहीं आदमी को दो-चार आने देकर वह सारा भेद न ले ले। पत्र तो वैसे भी उसको इस समय मिल ही गया होगा। उसकी हज़ार-बार गौं होगी तो आवेगा, आप उतावले क्यों होते हैं ?

दीवान०—आपने शायद उन्हें देखा नहीं ?

तहसील०—किन्हें ?

दीवान०—अभी जो ये दो जने इधर से गए हैं, कहीं यही न हों ? उनसे पूछा जाय।

तहसील०—भला सोचिए, किसी रास्ते-चलते से यह पूछना कहाँ तक उचित है कि क्यों साहब, आप क्या किसी लड़की की, या उसके बाप की, या बाप के दोस्त का, या बाप और दोस्त दोनों की तलाश में हैं ? जो सुनेगा वही हँसेगा।

दीवान०—किसी से न पूछना भी तो उचित नहीं।

विना पूछ-ताछ किए दुनिया में काम चल ही नहीं सकता। (एक ओर देखकर, हर्षपूर्वक) वह देखिए! वह देखिए!

तहसील०—कौन है वह?

दीवान०—मुझे तो वही दीखता है। देखिए न, कितनी जल्दी-जल्दी पैर उठाता है! बस इसी से सावित होता है कि यह अभी अविवाहित है; इसके पैरों में अभी बेड़ियाँ नहीं पड़ीं। विवाह हो जाने पर तो खाट पर से उठना कठिन हो जाता है, जल्दी-जल्दी चलना तो दूर किनार!

तहसील०—न-जाने वह बेचारा कौन है और किस काम से जा रहा है।

दीवान०—मेरा पचास बरस का अनुभव तो यह कहता है कि अवश्य यह अपने लिये धर्मपत्नी खोजने जा रहा है। दूसरे, किसी भी काम से आदमी इतनी जल्दी-जल्दी नहीं चल सकता। मैं आपसे शर्त बदता हूँ, यह अवश्य विवाह के पीछे सिड़ी हुआ नवयुवक है।

तहसील०—(ध्यान से देखकर) सिड़ी तो नहीं दीखता।

दीवान०—तो आधा सिड़ी जरूर है। इससे पूछा जाय। मैं कहता हूँ, यह शर्तिया किसी के फंदे में पड़ गया है।

तहसील०—कौन जाने ? संभव है, उसकी आदत ही जल्दी चलने की हो ?

दीवान०—अजी आप चलने को मत देखिए, बल्कि चलने के ढंग को देखिए ढंग को ।

तहसील०—इसके चलने के ढंग से तो यह सूचित होता है कि यह देश की उन्नति चाहता है, और झटपट स्वराज ले लेने के लिये बेचैन है । देखिए न, बाइसिकिल को मात कर रहा है ! यह लीजिए, आ पहुँचा ।

(युवक का प्रवेश)

तहसील०—(युवक से) क्यों महाशय, क्या मैं कुछ धृष्टता कर सकता हूँ ?

(युवक खड़ा होकर इधर-उधर देखता है)

दीवान०—(युवक से) आप विश्वास रखिए, मेरे बाल जंगल में सफ़ेद नहीं हुए हैं । मैं ख़ूब समझ गया हूँ कि आप क्या चाहते हैं । (तहसीलदार से चुप रहने का संकेत करता हुआ) भले आदमी कभी आधी बात नहीं कहा करते । (युवक से) हम लोग आपकी पूरी-पूरी सहायता करने में समर्थ हैं । 'ख़त का मज़मूँ भाँप लेते हैं लिफ़ाफ़ा देखकर ।'

(युवक घबड़ाकर चारों ओर देखता है)

तहसील०—बल्कि—

दीवान०—(तहसीलदार से चुप रहने का संकेत करता हुआ) हाँ, यदि आपके हृदय या मस्तिष्क में कुछ विकार हो तो उसे भी दूर करने में हम समर्थ हैं। हमारा खूब अनुभव है कि इस अवस्था में नवयुवक क्या चाहते हैं कि जिसके न मिलने पर उनको न-जाने क्या-क्या हो जाता है।

(युवक कातरता भरी दृष्टि से दोनों की ओर देखता है)

तहसील०—आप बेधड़क अपना परिचय हमें दे सकते हैं; हम किसी को आपका नाम-गाम नहीं बतावेंगे।

दीवान०—(तहसीलदार से) परिचय! सूरत ही कहे देती है।

युवक०—(दीवान के हाथ जोड़कर) मुझे बचाइए, अब कभी नहीं करूँगा।

दीवान०—देखिए, हम लोग समाज में सुप्रतिष्ठित और सभ्य समझे जाते हैं; और इसमें संदेह नहीं कि हैं भी; पर आपको जल्दी-जल्दी चलते देखकर हमें दया आती है, क्योंकि हम जानते हैं कि यदि हम चाहें तो आपकी इच्छा दम-भर में पूरी कर सकते हैं—यदि आपमें पात्रता हो तो।

तहसील०—आप हमसे कोई बात छिपाइए मत।

युवक—(हाथ जोड़कर) मेरी रक्षा कीजिए। समाज-सुधार और देश-प्रेम के कारण ही आज मुझे तंग किया जा रहा है। मेरा कोई भी दोष नहीं।

दीवान०—(गर्व के साथ तहसीलदार से) मैंने कहा न था कि यह बेचारा किसी के फंदे में पड़ गया है ?

युवक—आपका उपकार कभी न भूलूँगा।

तहसील०—(दीवान से) सचमुच बेचारे के हृदय पर कड़ी चोट लगी दीखती है। (युवक से) आपको अपने मन पर क़ाबू रखना चाहिए (एक ओर से कुछ पुलिसवाले सहसा आकर युवक को पकड़ लेते हैं; तहसीलदार और दीवान बहादुर भौचक्के होकर एक दूसरे की ओर देखते हैं)

युवक—(तहसीलदार व दीवान की ओर) देखिए, हैं ! हैं ! मुझे व्यर्थ—

पुलिस का जमादार—(चपत मारता हुआ) अबे चल उधर, साले, ऊपर से भला आदमी बनकर बाइसिकलें चुराता फिरता है !

(दीवान० व तहसीलदार अचरज से एक दूसरे की ओर देखते हैं)

युवक—(दीवान और तहसीलदार की ओर संकेत करता हुआ) इन्हीं के कहने से चुराई थी; ये दोनों मेरे उस्ताद हैं। (दोनों अचरज में डूब जाते और कुछ कहना चाहते हैं)

जमादार—(दोनों को पहचानकर सलाम करता हुआ, युवक से) अबे बदमाश, चल उधर। (इन दोनों से) बड़ी मुशकिल से बदमाश पकड़ा गया है। हुजूर, रोज़ कुछ-न-कुछ वारदात करके हम लोगों की आँखों में धूल झोंकता था।

युवक—मेरा कोई दोष नहीं, इन्हीं दोनों बुड्ढे खूसटों ने चोरी करने की लत डलवा दी है, और आप चोरी का माल बेच-बेचकर बड़े आदमी बन गए हैं।

दीवान०—(तहसीलदार से) हद हो गई !

तहसील०—सूरत-हराम है सूरत-हराम।

जमादार—(दोनों से) यह कंबख़्त बेफ़ायदे आपको बदनाम कर रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप थोड़ी-सी तकलीफ़ करके दारोग़ाजी से सब बातें कह दें, ताकि साले का जहन्नुम तक पता न चले।

दीवान०—(तहसीलदार से) चलो दस क़दम चले भी चलें।

तहसील०—क्या हर्ज है। (सब गए ; दूसरी ओर से बेचैनीराम व संपादक का प्रवेश)

संपादक—मैं कहता हूँ कि आख़िर मजिस्ट्रेट कुछ मुझे खा थोड़ही जायगा।

बेचैनी०—यद्यपि बड़े-बड़े वकीलों, बैरिस्टरों, डॉक्टरों, रायबहादुरों, कारीगरों, ताल्लुक़ेदारों आदि के पत्र हैं पर मेरा हृदय यही कहता है कि—क्यों जी सुना है वह तो कोई दीवान-बहादुर का मकान है न—टिड्ढा-निवास ?

संपादक—तुमने ठीक कहा, पर मैं पूछता हूँ कि मानहानि

के दावे के घेरे में से निकलने के लिये जो बीस लंबे-चौड़े द्वार हैं, सो वे क्या सबके सभी मेरे लिये बंद हो जायँगे ? मकान है तो हुआ करे।

बेचैनी०—हँसी नहीं, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि सब बातों को सोचते हुए मैं फिर भी इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि उसको मुझसे बढ़कर वर, और मुझको उससे बढ़कर कन्या नहीं मिलेगी।

संपादक—यदि वैसे पिंड न छूटा तो खुशामद ही कर लूँगा। अंत में यदि गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगने से भी पीछा छूटे तो निस्संकोच ऐसा कर लेना चाहिए। संपादकीय नीति तो यही कहती है।

बेचैनी०—हाँ, वैसे और तो कोई बात नहीं है, पर थोड़ा-सा संदेह है तो यही कि उसका विवाह कहीं दूसरी जगह पक्का न हो गया हो, क्योंकि पत्र कल का डाला हुआ है। यदि ऐसा हुआ तो—(ठंडी साँस लेता है)

संपादक—संपादन-कला के आचार्यों का यही बिना लिखा नियम है कि पहले तो ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिये कड़ी-से-कड़ी बातें लिखे, और फिर जब सरकार अपना क़ानूनी सोटा सँभाले तो जहाँ तक हो सके शीघ्र ही गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगने के लिये उतावला हो जाय। यों अपनी जान

बचावे, क्योंकि कहा है कि "जीवित नर हो तो भद्र शैतानी पश्यति।" ❀

बेचैनी०—हे भगवन्, क्या मैंने सदा पाप-ही-पाप किए हैं, कभी पुण्य किए ही नहीं जो तू मेरी नहीं सुन रहा? मैं कहता हूँ, और जोर के साथ कहता हूँ कि इससे अच्छी लड़की मुझे न मिलेगी, और न घराना। जब तुझे स्वयं उस लड़की से नहीं करना है तो क्यों नहीं तू मेरा विवाह उसी से करा देता? यदि कभी भी सच्चे हृदय से मैंने तेरी भक्ति की हो, यदि पूर्व-जन्मों के मेरे कुछ भी पुण्य इकट्ठे हों तो उस भक्ति के और उन पुण्यों के बदले में तू मुझे वही लड़की दिला दे जो टिड्ढा-निवास में बिजली की बत्ती की भाँति प्रकाशमान है। बस, और मुझे कुछ न चाहिए।

संपादक—तो मैं क्या जेल जाने से डरता हूँ? वाह, यह तुमने खूब सोची! मैं तो केवल यही सोचता था कि पाँच-छः वर्ष पहले जब असहयोग का दौरदौरा था तब जेल जाने का भी फ़ैशन खूब चला था; क्या बड़े और क्या छोटे सब कोई उसी प्रकार जेल जाते थे जिस प्रकार राम-लीला देखने जाते हैं। पर अब यह बात फ़ैशन में नहीं रही;

❀"जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति"

इसलिये जो कोई अब जायगा वही नक्कू बनेगा और पुरानी चाल का समझा जायगा।

बेचैनी०—अरे बाबा तो मैं पुरानी चाल से भी करने को तैयार हूँ; यों ही सही; यह मामला किसी प्रकार हो भी तय।

संपादक—तो अब देर न करके तुरंत किसी वकील स सलाह लेनी चाहिए।

बेचैनी०—मेरी भी यही राय है;झटपट उनके घर के नौकर-चाकर या किसी नौकरनी-चाकरनी को कुछ दे-लेकर लड़की के विषय में सब बातें पहले अलग जान ली जायँ, तब उनके यहाँ चला जाय। देर करने से लाभ न होकर हानि ही होगी, क्योंकि तब तक वहाँ कोई दूसरा आ धमकेगा।

संपादक—तो कलट्टर साहब क्या कोई मुझे फाँसी दे देंगे? (एक ओर देखकर) यह देखो! मैंने पहले ही कहा था कि जासूस मेरा पीछा करते हैं; तुम मानते ही न थे! अब प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख लो।

बेचैनी०—(उस ओर देखकर) अवश्य इस आदमी की कोई कन्या है जिसका कि विवाह नहीं हो रहा है, यद्यपि, इसकी सूरत से टपकता है कि वह पढ़ी-लिखी है, और अच्छी है। (संपादक से) ऐं? क्या कहा? हाँ, पुत्री अविवाहिता है तभी तो यह इतना धीरे-धीरे चलता है, मानो इसकी पीठ पर अनु-

चित बोझा लदा हो। एक-एक पग चलने के बाद उत्सुकता भरी दृष्टि से इधर-उधर देखता है कि कहीं इस बाग़ के पेड़ों में अच्छे लड़के लटक रहे हों तो अपनी कन्या के लिये मैं भी एक तोड़ लूँ! यह जिस नवयुवक को देखता है उसी पर पैनी दृष्टि गड़ा देता है मानो उसके हृदय की सब बातें जान-कर अपनी कन्या को उसे देने-न-देने के प्रश्न को अभी हाल हल कर डालना चाहता है। मैं तुमसे कहे देता हूँ, उसे ज्ञात नहीं है कि मैं यहाँ खड़ा हूँ, वरना अभी मेरी जान को आ जाय और कह दे कि 'बेटा, मेरी देवी-स्वरूपा कन्या तुम्हारी भेट है इसे अच्छी तरह रखना।'

संपादक—पीछे-पीछे डोलते फिरें तो हमें कोई आपत्ति नहीं है; डर यही है कि कहीं मुझे गिरफ़्तार तो नहीं किया चाहते हैं।

बेचैनी०—तुम निश्चय मानो, इसकी कन्या की माता अब इस संसार में नहीं है, वह कभी की चल बसी। इसके चहरे पर बूढ़ी विरह-वेदना साफ़ झलक रही है।

संपादक—मैं तुमसे सच कहता हूँ कि ये दोनों इधर ही आ रहे हैं। अवश्य कुछ-न-कुछ दाल में काला है। मैं तो इनसे साफ़ कह दूँगा कि क्यों मुझे व्यर्थ पकड़ते हो? मैं तो स्वयं मजिस्ट्रेट साहब की सेवा में उपस्थित होनेवाला हूँ। (सोचकर) आओ, इधर छिपकर देखें ये दोनों मेरे विषय में क्या बातें करते हैं।

बेचैनी०—तुमने सच कहा, यह अपने साथी से अवश्य ही अपनी कन्या के विवाह के संबंध में सलाह ले रहा है। पहले छिपकर सुनने में कोई हानि नहीं, बाद को, यदि आवश्यकता हुई तो, प्रकट हो जायँगे। (दोनों एक ओर छिपते हैं ; दूसरी ओर से दीवान बहादुर व तहसीलदार का प्रवेश)

दीवान०—तहसीलदार साहब, रह-रहकर यही बात मेरे ध्यान में आ जाती है कि देखने में इतना भोलाभाला और ऐसा बेढब पुराना चोर !

(बेचैनीराम और संपादक चकित होकर एक दूसरे की ओर देखते हैं)

तहसील०—हम लोगों से बचाने की प्रार्थना किस प्रकार कर रहा था मानो दूध का धुला हो ! बाइसिकिल की चोरी आजकल फ़ैशन हो रही है।

दीवान०—सच पूछो तो मैं अपनी लड़की के लिये मन-ही-मन उसे सोच चुका था, (बेचैनीराम संपादक की ओर गर्व के साथ देखता और संकेत करता है) पर इन दुष्ट नवयुवकों का कुछ भी ठीक नहीं। रियासतों का पचास वर्ष का अनुभव मुझे यह कहने के लिये बाध्य करता है कि अदालत से जिनको दंड मिला करता है उनमें कम-से-कम सत्तानबे फ़ीसदी नवयुवक होते हैं।

तहसील०—और ऊपर से भोले कितने बनते हैं! इनको दंड देता-देता मैं भी तंग आ गया हूँ।

दीवान०—कुछ पूछिए मत। इसीलिये कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि कन्या का विवाह किसी नवयुवक से न करके किसी चालीस और पचास के भीतरवाले से कर दूँ—अधेड़ से।

(बेचैनीराम बेचैन होकर दीवान की ओर जाना चाहता है: संपादक उसे हाथ पकड़कर रोकता है)

तहसील०—और साहब, नवयुवकों के चरित्र का भी क्या ठीक ?

(बेचैनीराम फिर उन लोगों की ओर लपकता है; संपादक रोकता है)

दीवान०—कुछ नहीं; और यदि उस चालीस और पचास के भीतरवाले की पहली बहू जीवित भी हो तो भी मेरी कन्या के सुख में उससे कोई बाधा नहीं पड़ सकती।

(बेचैनीराम फिर उधर जाना चाहता है, संपादक फिर रोकता है)

तहसील०—इन दुष्टों को तो बस साँप समझे। देखा न, हम लोग तो उस पर दया दिखाना—

दीवान०—बल्कि उसका विवाह कराना चाहते थे—

तहसील०—और उसने पुलिस से उलटा हमारा ही नाम ले दिया!

(वेचैनीराम व संपादक चकित होकर एक दूसरे की ओर देखते हैं)

दीवान०—और (हाथ से कुछ संकेत करता हुआ) उन बातों को सोचते हुए लड़की को किसी बड़ी उम्रवाले से व्याह देना वैसे भी बुरा नहीं है।

(वेचैनीराम झपटकर वहाँ आ कूदता है; पीछे-पीछे संपादक भी आता है। दीवान बहादुर व तहसीलदार चौंक पड़ते और हैरानी के साथ एक दूसरे की, और इन दोनों की, ओर देखते हैं)

वेचैनी०—(नम्रता-पूर्वक) श्रीमन्, जय रामजी की अथवा नमस्ते—यदि आप आर्य-समाजी हों तो। भगवन्, नवयुवकों पर जो हाल में आपने आक्षेप किए हैं, उनके उत्तर में इस समय तो मुझे केवल इतना ही निवेदन करना है कि क्या काबुल में गधे नहीं रहते हैं ? भो भगवन्, एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है, परंतु आप सुविज्ञ हैं, सब समझते हैं, किमधिकम् विद्वद्वरेषु ?

(दीवान बहादुर और तहसीलदार एक दूसरे की ओर देखकर कुछ संकेत करते हैं, और दोनों जल्दी-जल्दी चल देते हैं; वेचैनीराम उनके पीछे-पीछे जाने लगता है)

संपादक—(वेचैनी० से) मैं यहीं खड़ा हूँ, विवाह की पक्की करके यहीं आ जाना। (वेचैनी० गया) 'तबेले की बला बंदर के सिर !' चलो अच्छा ही हुआ। अनी टली। पुलिस पक-

ड़ने आई थी मुझे, और पकड़ ले गई न जाने किसे ! अप-राध था जातिगत द्वेष फैलाना, और वह हो गया बाइसिकिल की चोरी ! और गुप्त-पुलिसवाले निकले वर-खोजी ! यह खूब तमाशा हुआ ! चलो, कुछ देर के लिये तो पिंड छूटा । (इधर-उधर देखकर) डर यही है कि कहीं फिर न आ जायँ। (इधर-उधर देखता है; हाँफते हुए बेचैनीराम का प्रवेश)

बेचैनी०—इतनी दौड़-धूप की पर वे दोनों तो तीर हो गए। उनके जाने का मुझे उतना खेद नहीं है जितना इस बात का है कि नवयुवकों के विषय में वे अपने हृदय में बहुत बुरी धारणा लेकर गए हैं जिसका दूर किया जाना, देश के हित के लिये, आवश्यक था ।

संपादक—तुम व्यर्थ उनकी मृग-तृष्णा में मारे फिरे; तुम्हें तो यही जानकर संतोष कर लेना चाहिए था कि वे जासूस नहीं हैं ।

बेचैनी०—मेरा दृढ़ विश्वास है कि जैसे एक और एक दो होते हैं वैसे ही इसकी कन्या भी अत्यंत सुंदरी है ।

संपादक—यदि वे सरकारी जासूस होते तो तुम्हें भी व्यर्थ गवाही में घिसटना पड़ता ।

बेचैनी०—बड़े आश्चर्य की बात है कि न मैंने इसकी

कन्या को देखा न भाला, फिर भी मुझे उससे प्रेम हो चला है। बल्कि ऐसा लग रहा है कि मैं उसके प्रेम में अधिकाधिक फँसता चला जा रहा हूँ।

संपादक—माजस्ट्रेट साहब व किसी वकील से मिलने की चिन्ता के कारण—ओह—मेरा हृदय धड़क रहा है !

बेचैनी०—मेरे दिल के धड़कने का कारण यह है कि मैं यही सोच रहा हूँ कि इससे करूँ या उससे ? विना देखे-सुने किसी से प्रेम करना एक ऐसी बीमारी है जिसका कोई इलाज ही नहीं ; यदि इलाज है तो केवल मौत। हमारे देश की न-जाने कितने या कितनी सुशील लड़के या सुशीला कन्याएँ नित्य इस प्रकार के प्रेम का शिकार हो रहे हैं या हो रही हैं। मुझे दीखता है कि अब यह रोग मुझे भी लगा !

संपादक—तुमने सच कहा कि न-जाने कितने बेचारे संपादक सरकार की इस पक्षपात-पूर्ण नीति का शिकार हो रहे हैं। मुझे दीखता है कि इस रोग ने अबके मुझ पर भी हमला किया ! चलो, जल्दी किसी वकील को खटखटावें।

बेचैनी०—यदि उसने एक बार भी मुझे देख लिया तो अवश्य मुझसे प्रेम करने लगेगी। मैं किसी से प्रेम करूँ, यह तो बीमारी है ही, मेरे विना जाने कोई कहीं कोने में बैठी-बैठी मुझसे प्रेम करती हो, यह और भी बुरी बीमारी

है, क्योंकि इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव हृदय पर बेढब पड़ता है। इसलिये मैं कभी उसे छिपकर प्रेम न करने दूँगा, बल्कि साफ़ कह दूँगा कि प्रेम करना है तो खुलकर करो, जैसे बीच बाज़ार में खरा रुपया भुनाया जाता है। अच्छे काम में बदनामी या नेकनामी का विचार करना क़ायरता है।

संपादक—तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं जो तुम यह समझ रहे हो कि मैं अच्छे काम में बदनामी या नेक-नामी से रत्ती-भर भी डरता हूँ या कायर हूँ।

बेचैनी०—मुझसे न होने पर वह जन्म-भर क्वारी भले ही रह जाय, पर दूसरे का नाम न लेगी।

संपादक—(सोचता हुआ) अच्छा तो तुम्हारी इच्छा, चलो किसी नए वकील के ही पास चलो, जो तुम कहते हो कि वह दाम भी न लेगा और अपने ही पास से रजिस्ट्री का ख़र्च भी लगा देगा।

बेचैनी०—(घड़ी देखता हुआ) पहले 'टिड्ढा-निवास' चलो। अब समय हो गया है।

संपादक—जल्दी चलो, वरना वकील लोग कचहरी में ही मिलेंगे।

(दोनों गए)

चौथा दृश्य

स्थान—दीवान बहादुर का कमरा

(दीवान साहब अकेले आराम-कुर्सी पर बैठे-बैठे गुनगुना रहे हैं)

दीवान०—

सोई है सुबुद्धि और जाग्रत कुबुद्धि हुई,
इसको सुलाओ और उसको जगाओ नाथ ;
भटक भ्रमर-मन कंटकों में गया हाय ,
इसे सुलझाओ पद-कंज में लगाओ नाथ ;
घट-मठ-ज्ञान-पट मलिन हुआ है, द्वैत-
मल को हटाओ, आत्म-रंग में रँगाओ नाथ ;
मेरा अनुभव-धन छीन मौज मारती
कुवासना-निशाचरी को शीघ्र ही भगाओ नाथ ।

ओफ़ हो, कैसा विकट समय आया है ! होम करते में हाथ जलता है ! क्या ठिकाना है ! मैंने उस युवक को लड़की के योग्य समझकर उसकी सहायता करनी चाही, और उसने मुझे ही 'चोर का साथी गँठकटा' बताकर मेरे भावी उपकार का पेशगी बदला तुरंत दे दिया ! और, उसके बाद, उधर वे दोनों दुष्ट युवक जोंक की तरह चिपट गए कि जिनसे पीछा छुड़ाने के लिये ऐसे-ऐसे लंबे डग रखने

पड़े कि वामन को भी न रखने पड़े होंगे, जब कि बलि को छला था। अभी तक टाँगें दुख रही हैं। (घंटी बजाता है; नौकर का प्रवेश) देखो लपकुआ, कोई नवयुवक आवे तो भीतर मत घुसने देना।

लपकुआ—सरकार, सो कौन होय है ? कहीं मुझे काट खाया तौ ?

दीवान०—नहीं, तुमको नहीं काट सकता; वह जानवर तो नवयुवतियों को ही काटता है, सो भी ऐसे स्थान पर जहाँ जर्राह के हाथ की पहुँच नहीं है—

लपकुआ—क्या बात कही है सरकार ने! कि जहाँ जलाकै हाथ की पहुँची है ही नहीं ! वाह सरकार! क्या बात कही है हजूर ने !

दीवान०—बस यही कि कोई नौजवान आदमी आवे, यानी लड़का-सा, तो भीतर न आने देना। पहले उसका नाम पूछकर हमें बतला देना।

लपकुआ—भौत अच्छा। (गया)

दीवान०—बस, मैं अघाया ऐसे नवयुवक-रूपी अँधेरे कोठे से। (तहसीलदार का प्रवेश)

तहसील०—दीवान साहब, देख लीजिए मैं तो आ गया ; पर वे लोग अभी नहीं आए।

दीवान०—अजी अब मेरा जी तो नवयुवकों की ओर से सचमुच ही हट गया है; न आवें सो ही अच्छा।

तहसील०—हिंदुस्तानी टाइम के अनुसार आए तो अभी दो घंटे की देर समझिए। (लपकुआ का प्रवेश)

लपकुआ—हजूर, वो जो आपने, क्या नाम बताया था विनका—दो नाऊजूवक-से आए हैं। वैसैं बाहर सैं तौ आदमी दीखैं हैं, भीतर सै जानवर होयँ तौ खबर नहीं। मैंने पूछा कै भाई तुम नाऊजूवक तौ नहीं हौ तो विनों ने 'हाँ' कही!

दीवान०—तहसीलदार साहब, वही होंगे। अब आ गए हैं, तो मिल ही लें। अबे लपकुआ, जल्दी से कागज़-पत्र एक ओर कर। आइए तहसीलदार साहब, बैठक की थोड़ी-सी सफ़ाई कर लें, नहीं तो वे समझेंगे कि मेरी लड़की गंदी रहती है। (तीनों मिलकर कागज-पत्र हटाने लगते हैं) वैसे तो मुझे अब नवयुवक के लिये विशेष इच्छा नहीं है, पर यदि वे काम के हों, तो बात दूसरी है।

तहसील०—आप तो अभी से इतनी उत्सुकता दिखाने लगे! यह न करके ख़ूब गंभीर बनकर बैठिए, जैसे कि अथाह सागर। जब वे चार बातें करें, तब आप एक का जवाब दीजिए—सो भी अधूरा। जल्दी से रुखाई को अपनी सह-चरी बना लीजिए जल्दी से, वरना वे लोग समझ लेंगे कि

आप विवाह के लिये उत्सुक हैं, और सब काम बिगड़ जायगा।

दीवान०—तहसीलदार साहब, अब आप ही से क्या छिपाया जाय? सच तो यह है कि वह मेरी अधेड़-पसंदी न-जाने क्यों और कहाँ खिसक रही है। मेरे हृदय में न-जाने काहे का सागर उमड़ रहा है जिसने उस अधेड़-पसंदी की नाव को विचित्र भावों के भँवर में डालकर डुबा दिया है। ऐसी दशा में, मैं प्रयत्न करूँगा, पर कह नहीं सकता कि रुखाई दिखाने में कहाँ तक सफल हूँगा, क्योंकि मैं यह भी सोच रहा हूँ कि जो कहीं उन्होंने मुझे रूखा और नीरस समझ लिया तो भी—

तहसील०—उनकी सब बातों का उत्तर मैं दे लूँगा, आप कुछ न कहिएगा, चुप बैठे रहिएगा। आप तो अभी से इतने उत्सुक हो रहे हैं! लपकुआ, जा भेज दे।

दीवान०—(सुनी-अनसुनी करके, ऊपर देखकर हाथ जोड़ता हुआ) हे भगवान्, बस तू ही है जो कुछ है सो।

(दोनों युवकों का प्रवेश; उन्हें देखकर इनका और इन्हें देखकर उनका चौंकना)

दीवान०—हैं! क्यों बे लपकुआ! बेईमान! (उन दोनों से) आप लोग किसके कहने से भीतर घुस आए हैं? मैंने

आपको नहीं बुलाया था। क्यों आप मेरा पीछा कर रहे हैं? बस, भागिए यहाँ से। हम लोगों से किसी भी प्रकार की सहायता की रत्ती-भर भी आशा कदापि न कीजिए। निकलिए!

संपादक—क्षमा कीजिए, वह जो—

दीवान०—'वह जो' 'वह जो' क्या? मैं क्या जानूँ कि पुलिस ने आपके साथी का क्या किया?

बेचैनी०—वह जो—

दीवान०—मैंने आपसे कह दिया कि रास्ता नापिए।

संपादक—हम लोग कोई—

दीवान०—जी, आप कोई ऐसे-ही-वैसे थोड़ही हैं। जाइए-जाइए, खद्दर-प्रचार करके दिलद्दर दूर कीजिए—अपना और देश का; खूब चंदा हज़म करने को मिलेगा।

बेचैनी०—इस समय गो—

दीवान०—मैं गोशाला में झंझी कौड़ी न दूँगा। तहसीलदार साहब, कैसी-कैसी नई तरकीबें निकाली हैं लोगों ने रुपया कमाने की।

संपादक—विचार करने की बात है—

दीवान०—नहीं-नहीं, यहाँ प्रचार-व्रचार की कुछ ज़रूरत नहीं है। निगोड़ी प्रचारिणी सभा का मेरे सामने नाम न लीजिए; उसमें भी सब खाऊ-ही-खाऊ भरे हैं, जो आप खूब खाते हैं

और जब अपने पेट में जगह नहीं रहती, तो पिट्ठुओं को खिलाते हैं। मैं खूब जानता हूँ। टरकिए यहाँ से।

बेचैनी०—आपने शायद हमें पहचाना नहीं।

दीवान०—जी, मैंने खूब पहचान लिया है। आप कोई लाट साहब हैं न जो मैं आपको नहीं पहचानता हूँ!

तहसील०—आपसे हमें बात करनी होती तो पार्क में ही न कर लेते।

संपादक—फिर आप पछताइएगा।

दीवान०—आप क्या कोई राजनैतिक डाकू हैं जो हमारी राज-भक्ति के कारण हमें खा जायँगे? आप सीधी तरह से जाते हैं या बुलाऊँ पुलिस को?

बेचैनी०—क्या दीवान बहादुर साहब आप ही हैं?

दीवान०—(अचरज के साथ तहसीलदार से) दुष्टों ने सब पता लगा लिया है!

संपादक—आपकी पुत्री—

दीवान०—मैं मारे जूतों के चाँद हन्तरा कर दूँगा, अगर अब की बार लड़की का नाम लिया तो। (तहसीलदार से) मैं कहता हूँ, यह साला लपकुआं भी आधा सिड़ी है जो इन्हें भीतर लिवा लाया।

बेचैनी०—मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ—

दीवान०—वस वहुत हुआ, अब मैं आपको पुलिस के हवाले करता हूँ।

संपादक—(वेचैनीराम से) चलो, चलो, जल्दी चलो। कहीं सचमुच ही पुलिस न आ जाय। और सैकड़ों मिल जायँगी।

(वेचैनीराम कुछ कहना चाहता है, पर संपादक हाथ पकड़कर उसको वाहर खींच ले जाता है)

दीवान०—तहसीलदार साहव, आज सवेरे-ही-सवेरे न-जाने किस दुष्ट का मुँह देखा है जो—

तहसील०—अजी कुछ पूछिए मत।

दीवान०—पर मैं आप से यह पूछता हूँ कि आखिर यह वात थी क्या जो कि इनके मन में थी।

तहसील०—तव से इसी उधेड़-वुन में मैं भी लगा हुआ हूँ। (सोचता हुआ) मैं यह कहता हूँ कि यदि सचमुच ही ये दोनों धूर्त होते तो हम लोगों की अभी और खुशामद करते; यों समझदारों की तरह चले न जाते।

दीवान०—(सोचता हुआ) हो सकता है।

तहसील०—(सोचता हुआ) यदि सोचा जाय तो पार्क में भी इन्होंने हमसे कोई ऐसी वात तो कही नहीं थी, व्यर्थ ही हमने इन्हें चोर या उचक्का समझ लिया था। और,

सच पूछिए तो हमारा भी कोई दोष नहीं, दूध का जला छाछ को फूँक-फूँककर पीता है।

दीवान०—मैं कहता हूँ, चोर और उचक्कों में असली आत्माभिमान नहीं होता—दिखावटी होता है। इनमें कहीं कुछ असली की झलक तो नहीं थी? (सोचता हुआ) एक ने तो 'पुत्री' शब्द भी कहा था जिस पर कि मैंने उसे मारा होता।

तहसील०—सचमुच कहीं वही लोग तो नहीं थे?

दीवान०—तब तो बड़ा अनर्थ हुआ! अबे लपकुआ! ओ लपकुआ! (लपकुआ आया) ज़रा जल्दी से लपक तो जा, देख तो वे लोग किधर गए! बुला ला, बुला ला। (लपकुआ गया) यदि चोर उचक्के न हों तो लड़के दोनों अच्छे हैं। इतनी बुरी-भली सुनकर भी, सच पूछो तो, वे शान्त बने रहे।

तहसील०—लड़के तो सचमुच अच्छे हैं, बस एक ही बात है।

दीवान०—वह क्या?

तहसील०—देश-भक्त दीखते हैं।

दीवान०—लड़की सब सुधार लेगी।

तहसील०—लपकुआ मूर्ख उन्हें क्या लावेगा? संभव

है, उसके साथ आने में वे अपनी मान-हानि समझें इसलिये मैं ही जाऊँ।

दीवान०—आपने बहुत ठीक कहा। (तहसीलदार का जाना) हे भगवान्, बस, तू ही है। संसार में बड़े-बड़े धोखे होते हैं; अमृत के रूप में विष और विष के रूप में अमृत भरा पड़ा है। मनुष्य की बुद्धि कहाँ तक काम दे सकती है? (लपकुआ का प्रवेश) क्यों बे?

लपकुआ—सरकार वो तो चले गए; नहीं आए।

दीवान०—तुझे मिले भी?

लपकुआ—सरकार, (हाथ से संकेत करता हुआ) वो विधर गए और मैं इधर।

दीवान०—(घबड़ाकर) अबे तू बड़ा उल्लू है। अच्छा तो मैं ही जाता हूँ। यदि सचमुच ही ये लोग विवाह के लिये आए थे तो—(झटपट उलटे-सीधे कपड़े पहनने का यत्न करता है; तहसीलदार के साथ दोनों का प्रवेश)

दीवान०—मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ कि मैंने—

संपादक—(बीच ही में) अब आप हमें काँटों में न घसीटिए, जो होना था सो हो गया।

बेचैनी०—आप बड़े हैं, सौ जूते भी मार लीजिए तो हमारा क्या बिगड़ता है। हम तो आपके—नहीं, आप तो

हमारे—पिता-तुल्य हैं; नहीं-नहीं पुत्र-तुल्य, बल्कि पौत्र-तुल्य हैं हम तो आपके।

दीवान०—(तहसीलदार की ओर देखता हुआ, उन दोनों से) भला यह मैं क्यों करूँगा ? आपकी जो कुछ भी सहायता मुझसे बन पड़ेगी करूँगा।

संपादक—हमें आपसे केवल यही कहना था कि वह जो मेरे मित्र का एक विज्ञापन निकला था उसके लिये आपने हमें बुलाया था।

दीवान०—(हर्ष से उछलकर) अच्छा ! वही तो मैं सोच रहा था—(तहसीलदार की ओर देखता है; तहसीलदार गंभीर बने रहने के लिये संकेत करता है)

तहसील०—जी........ई। तो उसके विषय में आप क्या चाहते हैं ?

संपादक—मेरे ये मित्र जो आपके सामने बैठे हैं, जहाँ तक हो सके, ये इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि जहाँ तक हो सके आपकी कन्या से ही हो। आगे फिर जैसा हो।

दीवान०—तो आप यह बताइए—

तहसील०—(उसे रोककर) इस विषय में पहली बात तो यह है कि कन्या के विवाह की अभी हमें कोई जल्दी नहीं है—

दीवान०—जल्दी तो क्यों नहीं है—

तहसील०—(बीच में रोककर) क्योंकि हमारी कन्या सातवीं कक्षा में पढ़ रही है, और वह विवाह करना भी नहीं चाहती, उसने जन्म-भर विवाह न करने का ही प्रण-सा कर लिया है। अब वह बड़ी है, समझदार है, उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करके हम भी उसके दिल को दुखाया नहीं चाहते, पर यदि आपसे सब बातें पक्की हो गईं, तो संभव है, कुछ हो जाय।

दीवान०—वैसे बात तो यह है—

तहसील०—(उसे रोककर) दीवान बहादुर साहब ठीक कहते हैं कि वैसे बात तो यह है कि हमारे यहाँ अनगिनती नवयुवक इसलिये आए, पर हमें कोई जँचा ही नहीं।

संपादक—ओ हो ! अब याद आई !

दीवान०—क्या ?

संपादक—मुझे भी तो उस काम से कलट्टर साहब के यहाँ जाना है !

तहसील०—क्या मैं यह पूछने की ढिठाई कर सकता हूँ कि आपके भी भाग्य में किस शुभ काम से कलट्टर साहब बहादुर के यहाँ जाना बदा है ?

संपादक—मैंने अपने समाचार-पत्र में कुछ—

दीवान०—(घवड़ाकर) क्या आप राजद्रोही हैं ? (तहसीलदार की ओर संकेत करता है कि विवाह करना ठीक न होगा)

संपादक—जी नहीं, हिंदू-मुसलमानों के झगड़े—

दीवान०—आपको किसी के झगड़े में पड़ने से क्या मतलब ? दूसरे लोग भले ही लाठी और छुरे चलावें, आप अपने क़लम-कुल्हाड़े से क्यों किसी को चोट पहुँचावें ?

संपादक—जी, चोट-वोट नहीं, यों ही कुछ थोड़ा-सा लिख दिया था।

तहसील०—तो शीघ्र ही आप उसके लिये शोक प्रकट करके क्षमा माँग लीजिए—कहा मानिए।

दीवान०—क्योंकि यह भी तो फ़ैशन के विरुद्ध नहीं है।

संपादक—जी, मैं तो इसके लिये भी अब तैयार हूँ।

तहसील०—तैयार हैं तो बस, निश्चिंत रहिए। दीवान बहादुर साहब स्वयं आपको अपने साथ ले जायँगे और सब ठीक करा देंगे।

दीवान०—हाँ, इसमें क्या है ? मेरी बात को कलट्टर साहब कभी भी नहीं टाल सकते।

संपादक—(हर्ष के मारे उछलकर दीवान के पैर छूता हुआ)

नदी का एक तट मैं हूँ और दूसरे कलक्टर साहब; आप हम दोनों को मिलानेवाला पीपों का पुल हैं। (तहसीलदार के पैर छूकर) आप उस पुल की जंजीर।

बेचैनी०—(हर्ष से) और मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी कन्या से विवाह हो जाने पर फिर कभी भी स्वदेशी और स्वराज के झगड़े में न पड़ूँगा, और गधे से आदमी बनूँगा। मेरे मामाजी तो पहले भी यही सलाह दिया करते थे।

दीवान०—(बेचैनी० से) आप विश्वास रखिए, मेरी लड़की बड़ी सुशीला है, उसमें दैवी गुण कूट-कूटकर भरे हैं; वह पूर्व जन्म की अप्सरा है। आपका अहोभाग्य है कि आप उससे प्रेम करते हैं। (तहसीलदार की ओर देखता है)

तहसील०—आज यहीं आपका निमंत्रण है।

दोनों—इसके लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। भला हम—

दीवान०—आइए आप तब तक हमारा मकान, उद्यान, चित्रशाला, पशुशाला आदि तो देख लीजिए। (तहसीलदार के कान में) लड़की का आधे से अधिक काम तो मैंने ही कर दिया—अर्थात् लड़के को सुधारना।

तहसील०—जी हाँ, (उन दोनों से) आइए इधर—

दोनों—हमारे अहोभाग्य हैं! (दीवान० व तहसीलदार का जाना)

संपादक—मैं तुम्हारी ओर से विवाह पक्का करने के लिये बहुत-सी रूखी-रूखी बातें करना चाहता था, परंतु पहले तो कलट्टर साहब के डर ने बुद्धि पर परदा डाल रक्खा था, और अब उनसे क्षमा माँगकर पिंड छुड़ाने की आशा के हर्ष ने मेरी बोलती बंद कर दी है। पर घबड़ाओ मत, काम वैसे ही हो जाता दीखता है; यदि न होता दीखा तो वे बातें सुना दूँगा रूखी। विश्वास रक्खो, मुझे ऐसा स्वार्थी न समझना। (दोनों हर्ष के साथ हाथ मिलाते हैं, और जाते हैं)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उद्यान का एक भाग

(बाल्टोदेवी का प्रवेश)

बाल्टोदेवी—हे भगवान, यह मुझे क्या हो गया है ! क्या और सबको भी यही सब सहना पड़ता है या अकेली मैं ही इसका शिकार बन रही हूँ ? मुझे पूरा विश्वास है कि अकेली मैं ही इस विपत्ति में पड़ी हूँ, क्योंकि यदि इसके पहले यह विपत्ति किसी और पर पड़ी होती तो अवश्य ही उसके मरने का समाचार अब तक पत्रों में कभी का छप चुका होता । राधा, सीता, रुक्मिणी, सुभद्रा, दमयंती, मंदोदरी और सूपनखा का प्रेम भी यदि मेरा ही जैसा असली होता तो वे अवश्य ही हृदय के रोग से पीड़ित होकर मर गई होतीं ; सो बात आज तक नहीं सुनी गई । उन सबका प्रेम बनावटी था, अकेला मेरा ही असली है । (हृदय पर हाथ रखकर) कैसी पनचक्की सी चल रही है ! जब तक मैंने इन सज्जन को नहीं देखा था तब तक मेरा मन किसी अज्ञात और अपरिचित वस्तु की खोज में हैरान हुआ मानों आकाश में उड़ा-उड़ा फिरता था, उसमें एक ख़ालीपन सा

था जिसे भरने में मन-बहलाव की सब तरह की सामग्री असमर्थ थी; किंतु अब जब से इन्हें देखा है, मन इन्हीं के हाथ बिक गया है। यह जो हृदय में मोटर सी बिगड़ रही है सो केवल इसलिये कि जैसे हो सके वैसे झटपट मुझे इनकी सेवा का अवसर मिले। यही जी चाहता है कि अब इन्हें घर न जाने दूँ, हृदय में बंद करलूँ। दिन-रात देखा करूँ, एक मिनट को भी आँखों से ओझल न होने दूँ। दुनिया में ये अब और किसी के कुछ न रहकर मेरे ही सब कुछ हो जायँ।

(सखी का प्रवेश)

सखी—क्यों बहिन, तुमको यह क्या हो गया है जो इस तरह पागल सी हुई घूमती हो? मुझसे बात भी नहीं करतीं!

बाल्टीदेवी—तुम आगईं! इसमें मेरा नहीं मेरे मन का दोष है—

सखी—कैसा?

बाल्टी०—मैं अपने पति को देखकर भी, उन की बातें सुन-कर भी उन्हें नहीं पा रही हूँ।

सखी—(अचरज से) यह मैं क्या सुन रही हूँ?

बाल्टी०—सच बात।

सखी—सच बात ! पहले जब कभी तुमसे हँसी में भी इस तरह की बातें करने लगती थी तो तुम लजा जाती थीं और मुझे चुप कर दिया करती थीं। आज यों खुलकर—

वाल्टी०—अधिक तर्क-वितर्क करने की क्या आवश्यकता है ? न जाने किसने मेरी लज्जा हर ली है ? न जाने मुझे क्या हो गया, या हो रहा है ?

सखी— मान लो —

वाल्टी०—(बीच ही में) ऐसी बात मुहँ से निकालना भी मत। हिंदू लड़की एक से अधिक पति नहीं कर सकती। जो किसी लालच या हठ से एक से अधिक की इच्छा हृदय में करे तो समझ लो कि वह अवश्य पूर्वजन्म की वेश्या है और इस जन्म में आगे चलकर वैधव्य भोगनेवाली है।

सखी—ये जो दो पाहुने आए हैं—

वाल्टी०—(बीच में) पाहुने मत कहो, इनमें से एक मेरे पति हैं और दूसरे उनके मित्र।

सखी—तुम्हारे पति !

वाल्टी०—हाँ, जिन्हें हृदय से वर लिया है।

सखी—मान लो सब बातें पक्की न हुईं ?

वाल्टी०—राम-राम, ऐसी अशुभ बात मेरे सामने मुँह से न निकालो।

सखी— मानलो —

बाल्टी०—तो फिर ?

सखी—फिर क्या करोगी ?

बाल्टी०—कुछ नहीं।

सखी—क्या दूसरे से विवाह ही न करोगी ?

बाल्टी०—चुप, चुप ; यह पाप की बात मुँह से न निकालो।

सखी—हे भगवान, इतनी बदल गई ! यह प्रकृति का खेल है या प्रवृत्ति का ?

बाल्टी०—जिसका चाहो, समझो। तुम जाओ यहाँ से, दूसरे काम में लगो, न जाने क्यों इस समय मुझे अकेले ही में अच्छा लग रहा है।

सखी—तो मैं क्या तुम्हारे विरुद्ध थोड़ही हूँ । मुझे तो, सच कहती हूँ, बड़ी ही प्रसन्नता है; और मैं हर प्रकार से तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूँ, और तुम न भी कहोगी तो भी करूँगी, जैसे पुराने समय में त्रिजटा ने सीता की की थी यद्यपि वह और विषय था जिसका कि इस विषय से कोई ऐसा सीधा संबंध नहीं था।

बाल्टी०—यदि तुम सचमुच मेरी सहायता करना चाहती हो तो वहीं चली जाओ और सब बातें सुनकर मुझे बताओ। जाओ, जल्दी जाओ, मुझे अकेली ही रहने दो।

(कुछ सोचती हुई) हर प्रकार से निर्दोष, ऐसी मोहिनी सूरत मैंने आज तक नहीं देखी।

सखी—सखी, यह कोई नई बात नहीं है, प्रेम का चश्मा लगाने से सभी को ऐसा दीखने लगता है। सदा से यही होता आया है। अच्छा, मैं जाती हूँ। (गई)

बाल्टी०—(सोचती हुई) ऐसा करने में यदि कुछ बुराई न हो तो एक पत्र ही भेजूँ। क्या करूँ? किससे सलाह लूँ? अच्छा, आने दो; शकुंतला की भाँति मैं भी सखी स ही पूछूँगी। (कुछ आहट सुनकर एक ओर देखती है) अहा! ये इधर-उधर घूम रहे हैं! ऐसे निर्दोष सज्जन तो दुनिया में दूसरे कोई भी न होंगे। ऐसा मन होता है कि अभी पैरों पर गिरकर प्रार्थना कर डालूँ कि जैसे बने वैसे मुझे ही अपनी दासी बनाइए और मेरे पिताजी की त्रुटियों की ओर—यदि उनमें कुछ हों भी तो—ध्यान न दीजिएगा। (फिर उसी ओर देखकर) लो, ये तो इधर ही आ रहे हैं। आड़ में से इनकी मन-मोहिनी बातें सुनकर ही कलेजा ठंडा करूँ। (आड़ में हो जाती है; बेचैनीराम व संपादक का प्रवेश)

संपादक—तो अब तो सब हो ही रहा है; ऐसे उतावले क्यों हुए जाते हो?

बेचैनी०—मुझे और कुछ नहीं, मूर्ख कवियों पर तरस

आ रहा है जो बका करते हैं कि 'चंद्रमा-जैसा मुख !' 'कमल-जैसा मुख !' मैं कहता हूँ कि चंद्रमा और कमल दोनों उसके मुख के आगे पानी भरते हैं ।

संपादक—पानी भरते हैं तो क्या हो गया ?

बेचैनी०—तुम तो उधर अपनी क्षमा-प्रार्थना की बातों में लग रहे थे; मैं कहता हूँ, तनिक-सी झलक दीखी थी तब तो मेरा यह हाल हुआ, जब विवाह हो गया तब मैं कैसे बचूँगा ! हे मूर्ख कवियो, होश की दवा करो होश की ! (बाल्टी चकित और हर्षित होती है)

संपादक—अजी अभी सब तय हुआ जाता है ; क्यों घबड़ाते हो ? ये लोग सब पक्ष में हैं ही, अब रह क्या गया है ?

बेचैनी०—सच बताओ, क्या वह भी मुझसे प्रेम करती होगी ? मैं तो समझता हूँ नहीं करती होगी ; ऐं ? एक ओर प्रेम, दूसरी ओर उदासीनता ! हे ईश्वर, कैसा अंधेर है ! (बाल्टी खुश होती है)

संपादक—तुमको हो क्या गया है ?

बेचैनी०—और अभी जब पास से निकली, और मैंने ढिठाई के साथ पूछा कि क्या बाल्टीदेवी आप ही हैं, तो क्या मुसकराकर उत्तर दिया है कि जी नहीं, मैं तो उनकी

सखी हूँ। (वाल्टी चाकता है) हुँः, मुझे ही चकमा दिया होता ! पर वह तो यह कहो कि मेरा हृदय जो गवाही दे रहा था, सो भला मैं उसके प्रेम-पूर्ण धोखे में आ कैसे जाता ? (वाल्टी दुखी होकर मूर्च्छित-सी हो जाती है)

संपादक—यार, सच बात तो यह है कि यद्यपि सब बातें पक्की हो रही हैं और तुम मुझे मूर्ख समझोगे, परंतु अब भी मेरे मन में रह-रहकर यह संदेह उठ खड़ा होता है कि कलट्टर साहब से सहज में पिंड छूट भी जायगा या नहीं।

बेचैनी०—मैं पूछता हूँ कि किसी सच्चे प्रेमी को तरसा-तरसाकर मारने से लाभ ?

संपादक—मैं कहता हूँ कि साहब के चपरासी साले इनाम के लिये अवश्य पीछे पड़ेंगे।

बेचैनी०—सच बताओ, क्या वह हमारी बातें सुनती रही होगी ?

संपादक—मैं साफ़ कहे देता हूँ कि मैं किसी को कौड़ी एक न दूँगा। चाहे कोई बुरा माने या भला। मेरे पास डब्बल नहीं है देने को।

बेचैनी०—यह तो मैंने माना कि बुरा-भला मानने की बात नहीं है, पर मैं यह पूछता हूँ कि वह मुझसे झूठ क्यों बोली ? (वाल्टी बेचैन होती है)

संपादक—कभी नहीं, इस बात को तुम स्वयं जानते हो कि मैंने कभी कोई बात अपने पत्र में झूठ नहीं लिखी, फिर मुझ पर यह अत्याचार क्यों ? मैं तो साफ़ कहूँगा।

बेचैनी०—इन बातों को रहने दो ; तुम मेरी बात का जवाब दो। सुनो, मैं साफ़ कहे देता हूँ कि उसके बिना मैं न जियूँगा। यदि वह मुझे न मिली तो मैं आठ आने की अफ़ीम लेकर खा लूँगा।

संपादक—हँसनेवाले हँसा करें ; मुझे किसी के हँसने-रोने की परवा नहीं, मैं इस काम ही को छोड़ दूँगा।

बेचैनी०—जैसे बनेगा वैसे उसी से करूँगा।

संपादक—तो अब दीवान बहादुर साहब से पूछना चाहिए कि कितनी देर है।

बेचैनी०—तुमने ठीक ताड़ा; अब देर का काम नहीं है। चलकर जैसे बने वैसे शीघ्र ही मुझे उससे मिला दो। न हो तो किसी नौकर-चाकर की ही कुछ मुट्ठी गरम की जाय। मैं सच कहता हूँ कि मेरी सारी देश-भक्ति पर उसके प्रेम का पानी फिर गया है। अब मुझसे कुछ न होगा। आदमी से एक समय में एक ही काम हो सकता है, चाहे प्रेम कर ले, चाहे देश-भक्ति।

संपादक—तो चलो, जल्दी चलें।

वेचैनी०—चलो, चलो।

(दोनों का जाना; वाल्टी का प्रवेश)

वाल्टी०—हाय स्वामी, दुर्भाग्य से मेरी सखी को अपनी प्रियतमा वाल्टीदेवी समझ गए! यह क्या अनर्थ हो रहा है! जैसे समुद्र में डूबता हुआ आदमी नीचे ही को धसता जाता है उसी प्रकार तुम भी उसके प्रेम-समुद्र में प्रतिक्षण गहरे डूबते चले जा रहे हो! अब क्या मुझे निराश होकर अपने प्राण ही दे देने पड़ेंगे? यह दुष्टा सखी इस समय कहाँ से आ मरी! यह अवश्य तुमको मुझसे छीन लेगी। हाय, क्या करूँ?

(सखी का प्रवेश)

सखी—वाल्टी, वड़ा तमाशा हुआ!

वाल्टी०—(क्रोध से) चल हट उधर, चोट्टी—

सखी—(अचरज से) हैं! यह तुम क्या कह रही हो?

वाल्टी०—दुष्टा! छलनी! कपटिन! जिस थाली में खाय उसी में छेद करे! (मुँह ढक कर रोने लगती है)

सखी—(घवड़ा कर) हाय! मेरी सखी प्रेम के मारे पगली होगई है जैसा कि किताबों में लिखा रहता है! हे भगवान्, ऐसे शुभ समय में यह कैसी बिजली गिरी! (पास आकर) वाल्टी! (वाल्टी और भी रोती है)

सखी—हैं ! हैं ! यह क्या करती हो ? तुमको हो क्या गया ? वह देखो वह ! तुम्हारे पिताजी आरहे हैं।

बाल्टी०—मुझे विष दे दे, कुलटा, तू ही सुहागिन बन जा।

सखी—राम-राम, देखो, सभी काम ठीक हो रहा है, अपने को सँभाले रहो।

बाल्टी०—तूने उनका हृदय चुराकर उन्हें अपने बस में कर लिया ! मेरा भंडार लूट लिया ! विश्वासघातिन—

सखी—हाय, क्या अभी डॉक्टर को बुलाना पड़ेगा ? यह क्या अंड-बंड बक रही हैं !

बाल्टी०—अब ऐसी भोली बनती है !

सखी—(एक ओर देखकर) लो ! वे आ गए ! तुम्हारे पिताजी और तहसीलदार साहब ! उठो, उठो !

(दोनों जाती हैं; दूसरी ओर से दीवान० व तहसीलदार आते हैं)

दीवान०—लड़का अच्छा है, इसमें कोई संदेह नहीं।

तहसील०—सुशील है, होनहार है।

दीवान०—आप जानते ही हैं कि मैं तो किसी अधेड़ से करने का इरादा कर ही चुका था, पर देखता हूँ कि यह लड़का जवान होने पर भी बहुत-सी बातों में किसी अधेड़ से कम नहीं है।

तहसील०—सचमुच नहीं है।

दीवान०—मैं चाहता हूँ कि किसी तरह से एक बार लड़की उसे और वह लड़की को देख ले।

तहसील०—प्रेम के अनगिनती आँखें होती हैं; एक दूसरे को देख भी लिया हो तो कौन जाने ?

दीवान०—ऐसा तो, खैर, नहीं हुआ होगा; क्योंकि मेरी लड़की बड़ी ही लजीली और भोली है।

तहसील०—(आप ही आप) यह भी अजीब अंध-विश्वास है जो सृष्टि की आदि से ही माता-पिताओं के हृदयों में डेरा डाले हुए है ! (दीवान० से) शकुंतला के विषय में महर्षि कण्व का भी ऐसा ही विचार था।

दीवान०—क्या मतलब ?

तहसील०—यही कि जो पाव-भर अन्न खाता है या खाती है वह इतना हद से ज्यादा भोला या भोली नहीं हो सकता है और न हो सकती है। अर्थात् वह बहुत कुछ बुद्धि रखता है या रखती है, जो कि प्रेम की सान पर रक्खी जाने पर कैंची की भाँति और भी तेज़ हो जाती है।

दीवान०—क्या कहा आपने ?

तहसील०—यही कि अच्छा हो यदि माता-पिता, अब अधिक देर न कर, आज ही से अपनी संतान को इतनी भोली और लजीली समझना छोड़ दें।

दीवान०—न-जाने आप यह क्या चर्खा ले बैठे ? मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि वे दोनों हमारे वैभव को देखकर बड़े हर्षित और संतुष्ट हो रहे हैं। (तहसीलदार के कान में कुछ कहता है)

तहसील०—ठीक है, यही तरकीब ठीक होगी।

(बेचैनी० व संपादक का प्रवेश)

दीवान०—आशा है, हमारी चित्रशाला आप लोगों को पसंद आई होगी।

बेचैनी०—चित्रशाला क्या है, विचित्रशाला है !

संपादक—सभी चित्र अनमोल, अनुपम और धन्य हैं।

बेचैनी०—मैं अपने स्वर्गीय माता-पिता की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैंने ऐसी चित्रशाला आज तक नहीं देखी। इन चित्रों को देखने से पहले मुझे यह ज्ञात ही नहीं था कि कृष्णजी को भी कभी तपेदिक़ हुई थी, तथा गोपियाँ किसी ऐसे रोग से पीड़ित थीं जिसे लज्जा के कारण बहुत दिनों तक छिपाए रखने से वे पीली पड़ गई थीं, और सूखकर काँटा हो गई थीं। भला हो इन चित्रकारों का जिन्होंने ऐसी अद्भुत ऐतिहासिक खोज करके कुछ गुप्त बातों की मानो सूरत ही लोगों के सामने खड़ी कर दी। भला यही क्या कुछ कम बात है कि इन कला-विशारदों की कृपा से हमें यह ज्ञात हो गया

कि उस समय किसी का भी स्वास्थ्य महात्मा गांधी से अच्छा न था—और न लंबाई चौड़ाई ही—चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष।

संपादक—ये बातें भागवत लिखनेवाले व्यासजी को भी ज्ञात नहीं थीं। देखिए न, चित्रों के देखने से यह भी पता लगा कि अंत तक श्रीकृष्णजी ने न तो कर्मयोग का मार्ग छोड़ा और न कर्ज़न-फ़ैशन। रही उनकी मक्खन-पसंदी की, सो इसका कारण यह है कि उन दिनों कचालू की चाट नहीं बिकती थी, क्योंकि आलू तो बेचारे बाद को इस देश में आए हैं।

तहसील०—(अचरज से) तो क्या श्रीकृष्ण भगवान् ने कचालू कभी नहीं खाया था?

संपादक—जी; और न श्रीरामचंद्रजी ने; वरना वे मक्खन क्यों पसंद करते?

तहसील०—(दीवान० की ओर) कैसे आश्चर्य की बात है! ईश्वर के अवतारों तक ने चाट नहीं खाई थी!

दीवान०—यह तो मैं नहीं कह सकता कि किसको क्या बीमारी थी, पर यह बात सच है कि कला की दृष्टि से ये सब चित्र लासानी हैं। चित्र-कला के मर्म को समझने-वाले बड़े-बड़े लोग इनकी प्रशंसा कर गए हैं।

बेचैनी०—क्यों न हो, वही तो मैं भी कहता हूँ; यद्यपि मैं

चित्र-कला का कोई ऐसा बड़ा जानकार नहीं। क्या मैं यह पूछने की ढिठाई कर सकता हूँ कि ये कलावती देवी कहाँ की रहनेवाली हैं ?

तहसील०—जी, ये कलकत्ते की हैं, जहाँ की काली माई का नाम आपने भी सुना होगा। बस वहीं से ये ईस्ट इंडियन रेलवे पर सवार होकर इधर चली आई हैं।

संपादक—(कुछ बेचैनी के साथ) मैं सच कहता हूँ कि ऐसे चित्र कलट्टर साहब के यहाँ भी न निकलेंगे।

दीवान०—आपने ठीक कहा, अब थोड़ी देर में देख ही लीजिएगा। वे लोग तो जंगल और पहाड़ों के चित्र लटकाया करते हैं, जब कि हमारे यहाँ के चित्र मनुष्य के भीतरे से भीतरे मनोभावों की झलक दिखाते हैं।

संपादक—इसमें क्या संदेह ?

तहसील०—संपादकजी, तो अपने मित्र को यहीं छोड़कर चलिए अब आपका वह काम भी करा ही दिया जाय, क्योंकि आपको उसकी चिन्ता बेतरह सता रही है, और सचमुच वह है भी चिन्ता की बात। दीवान बहादुर साहब, कहिए, क्या राय है ?

दीवान०—चलिए न ? अभी लौट आएँगे; तब तक भोजन भी तैयार हो जायगा। (संपादक से) कलट्टर

BVCL 05017
8-22

साहब से वस दो ही वातों में फ़ैसला हो जायगा, आप कुछ भी चिन्ता न कीजिए।

संपादक—जब आप सरीखे परोपकारी हितैषी मौजूद हैं तव चिंता किस वात की ?

तहसील०—तो वस अव चलिए।

संपादक—वहुत अच्छा।

(वेचैनीराम को छोड़कर सव जाते हैं)

वेचैनी०—हे अप्सरे, क्या तू कुछ दिन और मेरे जीवित रहने में मेरी कुछ भी सहायता न करेगी, जव कि मैं तेरे प्रत्येक हाव-भाव-कटाक्ष पर यों वुरी तरह मुग्ध हूँ ? क्या तूने मुझे विलकुल ही गया-वीता समझ लिया है, जव कि मैं तुझे अपने हृदय की रानी वनाए वैठा हूँ ? रही मेरी प्रतिष्ठा की, सो हिंदी के समाचार-पत्रों के दफ़्तरों में जाकर देख, कि जव कभी मैं जा वैठता हूँ तो किस तरह पान पर पान चले आते हैं, और किस तरह वरफ़ पड़े हुए ठंडे पानी के झरने वहने लगते हैं ! अधिक क्या कहूँ, वस मैं ही जानता हूँ कि मैं कैसा वड़ा कवि हूँ; इस वात को मेरे मित्र भी पूरी तरह से नहीं जान पाते। उनमें योग्यता ही नहीं है। (सखी और वाल्टी दोनों एक ओर आड़ में खड़ी होकर सुनती हैं। वाल्टी सखी के और सखी वाल्टी के वस्त्र पहने हुए है) हे

मेनका-मद-गंजनी, यदि तुझमें योग्यता हो तो तू देखे कि मैं अभी हाल क्या करता हूँ। (जेब में से कागज-पेंसिल निकालता हुआ) इस समय तू न-जाने कहाँ बैठी आटा सान रही होगी, परंतु जब तेरे पास यह कवितामय पत्र पहुँचेगा तब तू समझेगी कि मेरी क्या दशा है। (लिखता है और बड़े जोश में पढ़ता भी जाता है)

(कवितामय-पत्र)

इच्छा है, प्यारी, तुमको जीवन-सहचरी बनाऊँ मैं,
हृदय-भवन के प्रेम-पालने में आजन्म झुलाऊँ मैं।
जहाँ तुम्हारा गिरे पसीना, अपना खून गिराऊँ मैं,
तुम्हें तारने को भव-सागर, स्वयं सेतु बन जाऊँ मैं।
जो विपदाएँ आवेंगी उनको मैं अपने सिर लूँगा,
तन, मन, धन तुम पर वारूँगा कष्ट न कुछ होने दूँगा!
मैं किवाड़ हूँ तुम चौखट हो, मैं खिड़का तुम जाली हो;
मैं चूल्हा हूँ, तुम चक्की हो—मैं लोटा, तुम थाली हो।
दया करो अब मेरे ऊपर, मुझको अधिक न तरसाओ,
अब जैसे भी बने, सुंदरी, मुझको झटपट अपनाओ।

(दुबारा देखता है कि कोई भूल तो नहीं रह गई; सखी बाल्टी को समझा-बुझाकर बेचैनीराम के पास भेजकर आप खिसक जाती है; बाल्टी को देखकर बेचैनीराम चौंक पड़ता है; दोनों कुछ देर चुप रहते हैं)

बेचैनी०—(बड़े साहस के साथ) प्रिय श्रीमती बाल्टी देवीजी, (ध्यान से देखता हुआ) यद्यपि आप इस समय पहले से कुछ बदली हुई दीखती हैं, परंतु सच कहिए कि मुझे पहले क्यों बहकाया था ? (बाल्टी को चुप देखकर) जल्दी कहिए, जल्दी कहिए, वरना मैं समझ लूँगा कि इस पंचतत्त्वमय अधम शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़कर इन प्राण-पखेरुओं के उड़ने का समय अब आ उपस्थित हुआ है ।

बाल्टी०—(नीचा मुख किए हुए) श्रीमान् मम परम (चुप हो जाती है)

बेचैनी०—हाँ, कहिए, कहिए, निस्संकोच कहिए, आपके बचनामृत का पान करने के लिये मेरे सूप-कर्ण उपस्थित हैं—बल्कि 'उत्सुक' शब्द ठीक रहता, जल्दी में 'उपस्थित' कह दिया, क्षमा कीजिएगा ।

बाल्टी०—(बेचैनी० से इधर-उधर देखती हुई) अच्छा, अब जाती हूँ, क्षमा—(चुप हो जाती है)

बेचैनी०—प्रिय श्रीमती श्री श्री श्री बाल्टी देवीजी, आपकी सेवा में मेरा नम्र निवेदन है कि हा, ये विष-सरीखे शब्द कैसे आपके मुखारविंद से बहिर्गत हुए जब कि वह अमृत का भंडार है, और जब कि आपसे प्रेम हो जाने के कारण मेरा ढेर हुआ जा रहा है ! (बाल्टी चुप रहती है)

बेचैनी०—हे 'चारु चिबुक नासिका कपोला' सुंदरी, श्री-बाल्टी देवीजी, किसी सच्चे प्रेमी की पीठ पर इस प्रकार उदासीनता के कोड़े फटकारना कौन से प्रेम-शास्त्र में लिखा है ? मेरा तात्पर्य यह है कि कौन-सी 'प्रेम-पच्चीसी' या विरह-बारहमासी' में यह बात लिखी है कि कोड़े फटकारना ? मेरा मतलब उदासीनता से था।

(वाल्टी मुसकरा देती है)

बेचैनी०—हे श्री श्री श्रीमतीजी, यदि आपको मुझसे कुछ भी प्रेम हो तो आपको मेरी सौगंध है आप अपने मुखरूपी कस्तूरी के नाफ़े को शीघ्र खोलिए।

बाल्टी०—क्या बातें ?

बेचैनी०—ओह, कुछ कहा तो ! मेरा अहोभाग्य ! इस प्रकार तो कुंभकरण की स्त्री ने भी उस बेचारे को न तरसाया होगा सिवा उस समय के जब कि वह सो रहा हो, अर्थात् छः महीने। मैं कहता हूँ, कि हे हे हे श्री श्री श्रीमतीजी, आप इतनी सुंदरी क्यों हैं, तथा संसार में एक-मात्र आप ही को इतनी अधिक सुंदरी बन बैठने का क्या अधिकार है ? क्योंकि आजकल अधिकारों का ज़माना है।

बाल्टी०—महाशयजी, मैं क्या जानूँ ?

बेचैनी०—अच्छा तो अब यह दास यह पूछने का साहस

करने की ढिठाई करने का कार्य संपादन करता है कि क्या यह संभव है कि प्रेम एक ही ओर से हो, दूसरी ओर उसका नाम भी न हो ?

वाल्टी०—हे श्रीमान्‌जी, अब अपनी अनेक त्रुटियों की क्षमा चाहती हूँ।

बेचैनी०—आपके सुंदर बालों को देखकर मुझे मेनका की याद आती है जिसे, इस जन्म में, मैंने केवल एक ही बार देख पाया था, और सो भी एक तमोली की दूकान पर बड़ी भीड़ में, जब कि वह शकुंतला को विश्वामित्र को दिखा रही थी। ये 'बुढ़िया का काता डब्लन में जाता' को मात करनेवाले ऐसे सुंदर बाल आपने कहाँ से पाए ? सच कहिए, आपको मेरी शपथ है।

वाल्टी०—हे श्रीमान्‌जी, प्रथम तो यह कि आप अपनी शपथ न धराया कीजिए, दूसरी बात यह कि इन केशों में पिताजी का पाँच सौ रुपया व्यय हुआ था।

बेचैनी०—ओह, पाँच सौ रुपया कौन अधिक हुआ ! इनके सँवारने में तो यदि पाँच हजार हुआ होता तो भी थोड़ा था। ये तो अनमोल हैं।

वाल्टी०—मम परम पूज्य श्रीमान्‌जी, ये पैरिस से मँगवाए थे पिताजी ने।

बेचैनी०—यही मैं भी सोच रहा था, श्रीदेवीजी, कि इनके सँवारने में जिस मसाले की आवश्यकता पड़ी होगी वह अभी तक अपने देश में बना ही नहीं, लोगों ने प्रयत्न तो बहुत किए।

बाल्टी०—श्रीमान्‌जी, पैरिस में इनका फ़ैशन है।

बेचैनी०—निस्संदेह, श्रीमतीजी, पैरिस फ़ैशन का घर है; फ़ैशन पैरिस से तले है।

बाल्टी०—जी, वहाँ भी जिनके सिर के बाल उड़ जाते हैं वे इसी प्रकार के बनावटी बाल लगा लेती हैं।

बेचैनी०—पर, श्रीमतीजी, कहीं वे बनावटी बाल आपके असली बालों को पा सकते हैं?

बाल्टी०—श्रीमान्‌जी, आपकी सेवा में नम्र निवेदन है कि ये भी बनावटी हैं, यद्यपि असली लगते हैं।

बेचैनी०—(अचरज से) क्या ये भी बनावटी हैं? सच कहिएगा?

बाल्टी०—श्रीमान्‌जी, मैं कभी झूठ नहीं बोलती।

बेचैनी०—(बेचैनी के साथ) तो क्यों श्री श्री श्रीदेवीजी, ये क्यों मँगाए गए थे—क्या मैं यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ?

बाल्टी०—श्रीमान्‌जी, बचपन में एक बीमारी के कारण

मेरे सिर के सब बाल उड़ गए थे; आशा है इस धृष्टता के लिये आप उन्हें क्षमा करेंगे।

बेचैनी०—तो क्या ये सबके सब नक़ली हैं ?

बाल्टी०—(बेचैनीराम को बेचैन और चिंतित देखकर) तो क्या आपका प्रेम केवल बाल ही भर का था ? (मुसकराना)

बेचैनी०—हे श्रीदेवीजी, कदापि नहीं, कदापि नहीं। पर आपने मुझे छकाना खूब चाहा ! मुझे ऐसा भोला समझ लिया है कि मैं यों ही बातों में आ जाऊँ ? आप नई कटोरी की तरह निर्दोष, चम्मच की डंडी के समान सीधी और रबड़ी के समान मनोमोहक हैं। मैंने तो ऐसी दूसरी कन्या—क्या मनुष्यों और क्या पशुओं में—कभी देखी ही नहीं। वाह, क्या आपका रूप-लावण्य है ! पुरानी चाल के तोते-चश्म कवि नाक के विषय में व्यर्थ ही 'तोता' 'तोता' रटा करते हैं ! भला आपकी नाक के सामने तोते की नाक किस काम की हो सकती है ? हे श्रीमतीजी, मैं तो यह कहता हूँ कि धन्य है ब्रह्मा को, जिसने आपकी नाक को ऐसा गढ़ा कि इलाहाबादी अमरूद भी मात हो गया ! यदि आगे के कवियों में बुद्धि का लेश भी हुआ तो वे आप ही की नाक को आदर्श मानेंगे, और इसी की उपमा देते-देते न थका करेंगे । इति।

बाल्टी०—उसका नाम ब्रह्मा नहीं था, हर्मन था, श्रीमान्जी।

बेचैनी०—किसका नाम श्रीमतीजी ने मुखारविंद से लिया, कि वह नहीं, यह था ?

वाल्टी०—जिसने यह नाक बनाई, श्रीमान्‌जी ।

बेचैनी०—किसने, श्रीमतीजी ?

वाल्टी०—वह एक जर्मन था जिसने इन्दौर के वैद्यों से नाक बनाना सीखा था। भारतवर्ष के बहुत-से स्त्री-पुरुषों की नाकें बनाता हुआ वह यहाँ भी आया था । पिताजी ने उसे दो हज़ार रुपए दिए थे।

बेचैनी०—(कुछ घबराहट के साथ) काहे के ?

वाल्टी०—परम पूज्य व प्रिय श्रीमान्‌जी, पिताजी की उससे यही बात ठहरी थी कि ऐसी नाक बना दो कि पास बैठनेवाले को भी न जँचने पावे कि नक़ली है ।

बेचैनी०— (हैरानी के साथ) तो क्या यह नाक नक़ली है ?

वाल्टी०—मेरे परम आराध्य देव, (मुसकराकर) बालों की तरह इसे भी निभाना ही होगा।

बेचैनी०— (हैरानी के साथ) श्रीमतीजी, यह मैं क्या सुन रहा हूँ—बाल भी नक़ली और नाक भी ! कौन मूर्ख इस पर विश्वास करेगा ?

वाल्टी०—मैं, हे श्रीमान्‌जी, कभी झूठ नहीं बोलती हूँ; फिर आपको तो हृदय अर्पण कर चुकी हूँ ।

बेचैनी०—तो अब, हे हे हे श्री श्री श्रीमतीजी, जब कि मेरा-आपका विवाह एक प्रकार से निश्चित हो चुका है तो अब मुझे इससे अधिक उल्लू बनाना आपको, बहैसियत भावी धर्मपत्नी, उचित नहीं है, क्योंकि बहुत खाने से अजीर्ण हो जाता है, चाहे किसी ने प्रेमपूर्वक या हँसी में ही खिलाया हो। अतएव, बस इतनी ही हँसी बहुत है।

वाल्टी०—मैं पूछती हूँ कि हे भावी स्वामीजी, आप मेरे हृदय के स्वामी हैं या नहीं ?

बेचैनी०—मैं कहता हूँ कि हे भावी धर्मपत्नीजी, अवश्य हूँ, अवश्य हूँ, अवश्य हूँ।

वाल्टी०—फिर नाक निगोड़ी से क्या है ?

बेचैनी०—फिर नाक निगोड़ी से कुछ भी नहीं है।

वाल्टी०—चाहे वह भले ही नक़ली हो ?

बेचैनी०—चाहे वह भले ही नक़ली हो; पर मैं यह कहता हूँ कि आप इस प्रकार की बातें करके मेरे प्रेम की अग्नि परीक्षा ले रही हैं यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ, और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि बाल और नाक चाहे बनावटी साबित भी हो जाते, पर मेरा प्रेम कभी बनावटी साबित न होता; बालों और नाक के बनावटी होने पर भी मैं और दूसरे गुणों द्वारा आपसे बँधा रहता। आप चाहे जैसी

परीक्षा ले लें, मैं फ़ेल कभी न हूँगा। भला, जब मैं असहयोग के दिनों में जेल जाने से नहीं डरता था तो फिर संसार में और कौन-सी ऐसी विकट परीक्षा है जिससे डर जाऊँगा !

बाल्टी०—धन्य है आपको ! मेरा सौभाग्य है कि आप सरीखा मन-चीता वर मुझे मिला। हे श्रीमान्‌जी, मैं सदा आपकी दासी बनी रहने में अपना सौभाग्य समझूँगी। (मुसकराती है)

बेचैनी०—'दासी' नहीं रानी, मालकिन, स्वामिनी। रे मूर्ख कवियो, संसार के भूत, वर्त्तमान व भविष्यत् तुक-जोड़ुओ, अभी जब मेरी प्रियतमा; इन श्रीमतीजी ने ये वाक्य कहे तब तुम सबके सब कहाँ मर गए थे ? क्या तुमने इन श्रीमतीजी की सुंदर दंत-पंक्ति नहीं देखी जो तुम अनार दाने के गीत गाते-गाते मरे हो, मर रहे हो, और मेरे हज़ार समझाने पर भी मरते रहोगे ? भला, इन सुंदर और मधुर दाँतों के सामने खट्टा और दवा या चटनी में पड़नेवाला अनारदाना है क्या चीज़ ! यदि तुममें कुछ भी समझ या मौलिकता है तो आगे से उस भद्दी उपमा को कभी काम में न लाना, भूलकर भी बस।

बाल्टी०—कौन-सी ? क्या चीज़ ? श्रीमान्‌जी, मैं समझी नहीं। सातवीं ही कक्षा तक तो पढ़ी हूँ।

बेचैनी०—कुछ नहीं बस, वही आपके दाँतों की सुंदर कतार।

बाल्टी०—ओह, इसके लिये तो पूरा एक हज़ार लगा था। मुझे हर्ष है कि आपको भी यह पसंद आई। पिताजी ने बहुत-से नमूनों में से इसे छाँटा था।

बेचैनी०—छाँटा था ?

बाल्टी०—जी, श्रीमान्‌जी।

बेचैनी०—कैसे ?

बाल्टी०—जब बारह-तेरह वर्ष की अवस्था तक भी मेरे दूध या पानी के दाँत न निकले तो डाक्टरों ने साफ़ कह दिया कि बस, अब आ चुके। तब एक हज़ार रुपया एक अमेरिका के डाक्टर को देकर और वहाँ से बहुत-से नमूने मँगवाकर—अमेरिका से—उन्हीं में से ये छाँट लिए गए।

बेचैनी०—(बड़ी बेचैनी के साथ) क्या आप सच कहती हैं ? श्रीहृदय-हारिणीजी।

बाल्टी०—मैं कभी झूठ नहीं बोलती, श्रीमान्‌जी।

बेचैनी०—आप सचमुच ही मुझे पागल कर देंगी क्या ? किसी सच्चे प्रेमी को इतना अधिक न बनाना चाहिए। बस बहुत हुआ।

बाल्टी०—तो क्या आप इन्हें असली समझते हैं ?

बेचैनी०—हे श्रीमाधुरीजी, क्या आप इन्हें नक़ली बताती हैं ?

बाल्टी०—परम पूज्य हृदयदुलारेजी, मैं कभी भी झूठ नहीं बोलती।

बेचैनी०—आप सचमुच ही श्री 'दिल्लगी की पुड़िया' जी हैं जो इतनी बेढब दिल्लगी करती हैं, और यह सोचने का कष्ट नहीं उठातीं कि कभी-कभी इसमें किसी के प्राण तक निकल खड़े होना उचित समझ लिया करते हैं। (आप ही आप) हे दैव, कहीं ये देवीजी सच तो नहीं कह रहीं? यदि ऐसा हुआ तो पुनर्जन्म के लिये शीघ्रता करनी पड़ेगी। (बाल्टी से) हे श्रीसत्यवतीजी, मेरे ऊपर तरस खाकर साबित कीजिए कि यह जो कुछ आप कह रही हैं सब सच है। यों तो थोड़ी ही देर में मेरा प्रेम आप पर इतना बढ़ गया है कि नाक-कान तो क्या यदि आपके प्राण भी नक़ली हुए तो भी मैं आपका दास हो चुका—

बाल्टी०—हैं! हैं! आप अपने को ऐसा क्यों कहते हैं? मैं आपसे केवल एक प्रश्न करती हूँ—पुरुष स्त्री के केवल बाहरी रूप पर ही प्रेम करता है अथवा उसके और गुणों पर भी?

बेचैनी०—आहा, वही तो मैं कहता हूँ कि आप मेरी केवल कठिन परीक्षा ले रही हैं, और कुछ भी बात नहीं है। मैं कहता हूँ, क्यों हों बनावटी? और, मैं क्यों छोड़ दूँगा प्रेम

करना ? बस, बहुत हुआ; अब यह न कहिए कि मैं झूठ नहीं बोलती; हँसी में बोली हुई झूठी बात भी तब झूठ हो जाती है जब उसका परिणाम बुरा हो, उससे पहले नहीं। मैं सच कहता हूँ—

वाल्टी०—मैं बिलकुल सच कहती हूँ श्रीमान्‌जी।

बेचैनी०—(घबड़ाकर ऊपर देखता हुआ) क्या सचमुच बिजली गिरनेवाली है ?

वाल्टी०—क्या तब सचमुच आप मुझसे प्रेम करना छोड़ देंगे और किसी दूसरी से विवाह कर लेंगे ? क्या आप इतने कठोर हो जायँगे, श्रीपतिदेवजी ?

बेचैनी०—श्रीपत्नीजी, मेरा एक-मात्र आप ही पर प्रेम है यह बात अच्छी तरह समझ लीजिए, और, मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी बातें करके मेरे प्राणों पर संकट उपस्थित मत कीजिए।

वाल्टी०—श्रीमान्‌जी, मैं समझी नहीं।

बेचैनी०—श्रीमतीजी, हर बात की सीमा होती है; बस बहुत हो चुका हास-परिहास।

वाल्टी०—आप मेरे जीवन के आधार हैं—

बेचैनी०—आप मेरी जीवन-नौका हैं; अतएव अब यदि आपने ऐसी कोई बात कही तो मुझे डर है कि मैं पहले से सूचना दिए बिना ही बेहोश हो जाऊँगा। आपने व्यर्थ

ही मेरे हृदय के खेत में संदेह का बीज डाल दिया है। अतएव मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी, और इसका कुछ भी परिणाम न होगा यह जान कर भी, केवल अपनी उत्सुकता निवारण करने के लिये, आपसे यह प्रार्थना करनी पड़ती है कि लाइए देखूँ आपके सुंदर केश—

वाल्टी०—क्या सचमुच ही आप इन्हें देखना चाहते हैं ?

बेचैनी०—हाँ, यदि आप कृपा करके—

बाल्टी०—श्रीमान्‌जी, यह कृपा-वृपा रहने दीजिए, मैं आपकी हूँ ; आप मुझसे विवाह की प्रतिज्ञा करके मुझे अपना ही चुके हैं ; इसलिये, यद्यपि पिताजी ने ऐसा करने को तो क्या, इसके विषय में कहने तक को मना कर दिया है, तो भी—क्योंकि पति की हैसियत से अब आप ही मेरे परमेश्वर हैं—मैं आपको विलायती कारीगरी के नमूने दिखाकर आपकी उत्सुकता दूर करने को हर तरह से तैयार हूँ । मैं आपकी आज्ञाकारिणी दासी हूँ ।

बेचैनी०—(आप-ही-आप) हे भगवान्, क्या होनेवाला है ? ऐसी कड़ी परीक्षा तो राजा हरिश्चंद्र को भी न देनी पड़ी थी—श्मशान में ।

बाल्टी०—(बनावटी बाल उतारकर दिखाती हुई) यह फ्रांस की कारीगरी का नमूना है ।

(बेचैनीराम का चहरा फक् हो जाता है)

वाल्टी०—(बालों को सिर पर रखकर नाक निकालकर दिखाती हुई) यह जर्मनी की—यद्यपि उन्होंने हमारे ही देश से सीखी है— (बेचैनीराम की सूरत बेतरह बिगड़ जाती है)

वाल्टी०—(नाक लगाकर दाँतों को पकड़ती हुई) अमेरिकावाले—

बेचैनी०—(घबड़ाहट के मारे बेञ्च पर बैठकर) बस, बस, बख्शिए, बचाइए—(बेहोश हो जाता है; उसकी यह दशा देखकर वाल्टी भी बेहोश होती है; गड़बड़ सुनकर सखी आती है)

सखी०—(इन्हें बेहोश देखकर, घबड़ाकर)

(सोरठा)

छायावादी अंत, हा इस प्रेमालाप का !
क्या ऋतुराज वसंत, आज प्रलयकारी हुआ ?

क्या विवाह से पहले मिलने का यही परिणाम होता है ? (एक ओर देखकर चौंकती है और दोनों के हाथ पकड़कर उठाने का प्रयत्न करती है) अरे उठो ! उठो ! यह देखो वे आ रहे हैं ! उठो ! उठो ! (सबका आना और दोनों को बेहोश देखकर चकित होना; सखी का छिपाकर वाल्टी को और संपादक का छिपाकर बेचैनीराम को नोचना; दोनों का होश में आना; वाल्टी का लजाकर एक ओर खड़ा हो जाना ; सबका बेचैनीराम की ओर देखना)

बेचैनी०—(संपादक की ओर) Friends, (दीवान बहादुर की ओर) Fathers, and (तहसीलदार की ओर) Gentleman,

'Hanging and wiving go by destiny'. (सखी और बाल्टी की ओर) सखियो और बहुओ, अर्थात् कोई हजार चाहे कि यहाँ मेरा हो वहाँ न हो, अथवा वहाँ न हो यहाँ हो, पर उसकी एक न चलेगी, चाहे वह कितना ही प्रयत्न करे। विवाह और फाँसी के विषय में 'होइ है वही जो राम रचि राखा—' इसलिये (संपादक से) चलो, करो तैयारी; (दीवान० व तहसीलदार से) आप लोग भी करें।

दीवान व तहसीलदार—तथास्तु।

(सब जाते हैं)

हमारी हास्य-रस की चुनी हुई पुस्तकें

रावबहादुर

[लेखक—फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ नाटककार मो० मोलियर]

मोलियर संसार-भर में, हास्य-रस की रचना में, अपना सानी ्हीं रखते। यों तो मोलियर के और भी छोटे-छोटे कई ग्रंथों का ंदी में अनुवाद हो चुका है, कितने ही उनके आधार पर भी लिखे ाए हैं, पर रावबहादुर का स्थान उन सबसे ऊँचा है। इसमें ख़िताब के लालच में मर मिटनेवाले, उपाधि के लोभ में किसी भी उपद्रव से बाज़ न आनेवाले, स्वल्प-शिक्षित, पर सर्वज्ञता का दम भरनेवाले, मनचले मूर्ख—घर-फूँक-बहादुर—का ख़ाका ख़ासी तौर से खींचा गया है। फ़्रांस, महाराष्ट्र, अवध, आगरा आदि कई देशों की नोक-झोंक, फ़ैशन, चाल-चलन, ठाट-बाट और चालाकी का मज़ा उठाना हो, तो इस पुस्तक को आरंभ कीजिए, फिर क्या मजाल कि आप उसे ख़तम किए बिना छोड़ें। जिसने हँसने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे पढ़कर खिलखिला उठेगा। बस, पुस्तक मँगाकर पढ़िए, और ्रावबहादुर की कारगुज़ारी पर हँसिए। मोलियर का चित्र भी है। .०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ।।।), सुंदर रेशमी जिल्द १)

प्रायश्चित्त-प्रहसन

'सुधा'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न-लिखित। देशी होकर भी विदेशी चाल चलनेवालों का इसमें ख़ूब ही ख़ासा ख़ाका खींचा गया है। पढ़कर हँसते-हँसते पेट में बल पड़ने लगेंगे। बड़ा ही सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन है। मूल्य ।)

अचलायतन

[मूल-लेखक—कवींद्र रवींद्र]

अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न। मूल-लेखक रवींद्र बाबू ने इसमें वर्तमान हिंदू-धर्म की छुआछूत और आडंबर की कट्टरता पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला और उसका खंडन किया है। यह छोटा-सा नाटक पढ़ने ही योग्य है। जिन्होंने रवींद्र बाबू की रचनाओं को देखा है, वे स्वयं समझ लेंगे कि यह नाटक किस कोटि का होगा। इसके गीत भी एक-से-एक अच्छे हैं। अनुवाद भी ऐसी सरस, सरल, सुंदर भाषा में किया गया है कि यह एक स्वतंत्र रचना मालूम होती है। मूल्य ।।), सजिल्द १)

मूर्ख-मंडली

[पाँचवाँ संस्करण]

(लेखक—पं० रूपनारायण पांडेय)

स्वर्गीय श्रीद्विजेंद्रलाल राय के अत्यंत मनोरंजक और सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसे पढ़कर मारे हँसी के आप लोट-पोट हो जायँगे। हम दावे के साथ कहते हैं कि इससे बढ़कर मनोरंजक प्रहसन आपने हिंदी में न पढ़ा होगा। सभी हिंदी-पत्रों और विद्वानों ने मुक्तकंठ से इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ।।=); सजिल्द १=)

गधे की कहानी

पं० भूपनारायणजी दीक्षित ने यह 'गधे की कहानी' लिखकर बाल-साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति की है। गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक ढंग से कही है। भाषा ख़ूब सरल और मुहाविरेदार है। गधे ने अपनी भाषा में मानव-समाज पर कैसी हास्य-जनक आलोचनाएँ की हैं, यह देखने ही योग्य है। पुस्तक सचित्र है। मूल्य ।।।), सजिल्द १।)

लबड़धोंधों

[लेखक, पं० बदरीनाथ बी० ए०]

भट्टजी हास्य-रस के अद्वितीय लेखक हैं। हास्य-रस के इनके लेख विशेषता रखते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे कैसी सभ्य, सुंदर, सरल, सरस और चुटीली भाषा में लिखे होते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा-प्रद भी इतने कि छोटे-बड़े सभी उन्हें पढ़कर लाभ और आनंद उठा सकते हैं। जिसने हँसने और पढ़ने की क़सम ले ली हो, वह भी इस पुस्तक को हाथ में लेकर समाप्त किए बिना नहीं छोड़ेगा, और क्या मजाल कि जो वह हँसते-हँसते लोटन-कबूतर न हो जाय। कई रंगीन और सादे चित्रों से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य ॥=), जिल्ददार १।=)

मिस्टर व्यास की कथा

[लेखक—भूतपूर्व आनंद-संपादक स्वर्गीय श्रीशिवनाथ शर्मा बी० ए०]

अन्य रसों की तरह हास्य-रस पर क़लम चलाना सहज नहीं। बिरले ही प्रतिभाशाली, सिद्ध-हस्त लेखक इसमें सफलता पाते हैं। व्यंग्य और विनोद द्वारा समाज की बुराइयों का चित्र खींचना साधारण लेखक की क़लम से बाहर है। लक्ष्य-हीन, उद्देश्य-हीन हँसी के चुटकुले लिख लेना मामूली बात है। यही कारण है कि संसार की सभी भाषाओं में हास्य-रस का साहित्य बहुत ही कम है। हिंदी में तो इस प्रकार की मौलिक रचनाएँ नहीं के बराबर हैं। शर्माजी उच्च कोटि के हास्य-लेखक थे। आपकी इस पुस्तक में व्यंग्य और विनोद द्वारा बड़े ही अच्छे ढंग से समाज की बुराइयों का चित्र खींचा गया है। पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति और अक्षर-अक्षर में व्यंग्य और विनोद कूट-कूटकर भरे हुए हैं। हास्य-रस की प्रधानता के साथ-साथ भाषा की सजीवता और ओज ने सोने में सुगंध का काम किया है। सभ्य हँसी, लच्छेदार भाषा में, स्थान-स्थान पर भर दी

गई है। क्या मजाल कि रोनी सूरतवाले भी इसकी एक-एक पंक्ति पढ़कर हँसते-हँसते लोट-पोट न हो जायँ। एक बार पुस्तक को हाथ में लेकर फिर समाप्त किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। अपने ढंग के इस नए और निराले, हास्य-रस-पूर्ण, सचित्र ४३२ पृष्ठ के ग्रंथ का मूल्य केवल २।।) रक्खा गया है। सजिल्द ३)

ईश्वरीय न्याय

[लेखक—अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम्० ए०]

यह व्यंग्य-नाटक है। गौड़जी काशी-म्युनिसिपलिटी में शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। इस नाटक में आपने अत्यंत मार्मिक ढंग से दिखाया है कि अछूतों के उद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा-सुधार में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और अछूतों के प्रति बहुत प्रेम दिखलानेवाला हिंदू-सभ्य-समाज अवसर पड़ने पर कैसे बग़लें झाँकने लगता है। मूल्य ।।), सजिल्द १)

नटखट पाँड़े

एक नटखट लड़के की आत्मकथा। आदि से अंत तक एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं, जो नीरस और रूखा हो। एक-एक शब्द में हास्य-रस भरा हुआ है। नटखट पाँड़े का विद्यारंभ, डॉक्टर महोदय की दुर्दशा, बोर्डिंग हाउस के अध्यक्ष महोदय की दुर्गति, नटखट पाँड़े का रात को भाग जाना, गाने की मजलिस, सारी कहानी इतनी अनूठी और दिलचस्प है कि जिस लड़के ने किताब खोलने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे समाप्त किए बिना नहीं रह सकता। कितने ही प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ मारे हँसी के पेट में बल पड़ जायँगे। इसके लेखक वही पं० भूपनारायणजी दीक्षित हैं। पुस्तक में कुल १४ तिरंगे हाफ़टोन चित्र हैं, जिनसे उसकी सुंदरता और भी बढ़ गई है। मूल्य १।।), २)